शुक्लयजुर्वेद चयनिका





संपादक :
श्री रमेश चन्द्र पाण्डेय

संशोधक : जगदानन्द झा

शुक्लयजुर्वेद चयनिका

संपादक :
श्री रमेश चन्द्र पाण्डेय

संशोधक :
जगदानन्द झा

प्रकाशन वर्ष : 2019

प्रकाशक :
रमेश चन्द्र पाण्डेय
मो. : 9415795776

पुस्तक का नाम :
शुक्लयजुर्वेद चयनिका

प्रथम संस्करण – 2019

सहयोग राशि – रुपये 101/–

अभिमत

ज्ञान–विज्ञान के अथाह एवं अक्षय भण्डार वेदों में नैकविध विषयों से सम्बद्ध मन्त्र विद्यमान है। एक ओर ये जहाँ उपासना, ईशस्तुति से सम्बन्धित मन्त्रों को अपने में समाहित किये हुए हैं तो दूसरी ओर इनमें विज्ञान–औषधि विज्ञान, गणित, रसायन, भौतिक विज्ञान आदि से सम्बद्ध मन्त्र समाविष्ट है। कृषि, राष्ट्र भक्ति, राष्ट्र प्रेम, वाणिज्य के ज्ञान से अनुस्यूत सामग्री वेदों के विषय बाहुल्य को इंगित करती है। इतना ही नहीं, इनमें पर्यावरण को संरक्षित एवं संतुलित करने का सन्देश है तो आतंकवाद, क्षेत्रीयतावाद, भ्रष्टाचार जैसी वर्तमान यथावत् समस्याओं के समाधान भी हैं। सत्य, अहिंसा, तप, त्याग जैसे उदात्त शाश्वत मूल्यों के संवहक वेदों में विश्वशान्ति का संगीत भी गुन्जित होता है।

अनेक बहुमूल्य विचार–रत्नों के रत्नाकर वेदों में अद्वितीय भाव गरिमा से युक्त मन्त्र हैं। **'शुक्लयजुर्वेद चयनिका'** कृति के सम्पादक श्री रमेश चन्द्र पाण्डेय ने इस वेद रत्नाकर में अवगाहन करके रत्नों को उसमें से निकालकर अपनी कृति में संजोया है। 'जिन खोजा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ' उक्ति को श्री पाण्डेय ने चरितार्थ किया है। उन्होंने अत्यधिक परिश्रम एवं मनोयोग से मन्त्र–रत्नों का चयन कर 'चयनिका' के रूप में उन्हें पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। आशा ही नहीं विश्वास भी है कि उनकी यह कृति जिज्ञासु पाठकों व विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त ज्ञानवर्द्धक एवं उपयोगी सिद्ध होगी।

इस अत्यधिक जटिल तथा दुरूह कार्य को सम्पन्न करने के लिए सम्पादक को हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएँ : ''शुभास्ते पन्थानः स्युः।''

हितैषिणी,

डॉ. पुष्पा मलिक

पूर्व एसो. प्रो./अध्यक्ष–संस्कृत

भ. आर्य कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय लखीमपुर–खीरी

प्राक्कथन

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था
वसुन्धरा पुण्यवती च तेन।
अपारसंवित्सुखसागरेऽस्मिन्
लीनं परं ब्रह्मणि यस्य चेतः।।

(स्कन्दपुराणम् माहे. कौमार. 55/140)

इष्टदेवी भगवती (बेलकेश्वरी) परम्बा के अनुग्रह से मुझे ऋग्वेद चयनिका को सम्पादित करने का अहेतुक सौभाग्य एवं पितरों का पुण्य शुभाशीर्वाद प्राप्त हुआ है। चारों वेदों का स्वाध्याय कर उसने अच्छे से अच्छे मंत्रों एवं सूक्तों का (अर्क एवं भावार्थ) संकलन कर अपने स्वान्तः सुखाय स्वाध्याय के लिए चयनित किया था लेकिन विद्वान् श्री जगदानन्द झा जी के परामर्शानुसार इसे प्रकाशित करने इच्छा जागृत हुई। चयनिका के सम्बन्ध में मैं इतना ही कह सकता हूँ कि इन वेदमंत्रों की मनोमोहक सुगंध ने मेरे मानस को सुरभित किया है, उस सौरभ के प्रसाद को अपने तक सीमित न रखकर सुधी उपासकों को विस्तीर्ण करूँ। इस प्राक्कथन में ऋषियों/ मुनियों/विद्वानों एवं टीकाकारों के वेद के संदर्भ में विशेष कथनों एवं उक्तियों को प्रस्तुत कर रहा हूँ।

वेद हमारे सनातन धर्म के चक्षु उत्स, प्रमाणिक शास्त्र एवं अमूल्य धरोहर हैं, जिसके प्रत्येक सूक्त, अक्षर, वर्ण अपना गूढ़ एवं गम्भीर अर्थ रखते हैं। दक्षिण भारत के विद्वानों ने पद–पाठ, क्रम–पाठ, शिक्षा–पाठ, शिखा–पाठ एवं धन पाठों के द्वारा इनके अक्षरों के आवृतियों को अभी तक सुरक्षित रखा है, वेद अपौरुषेय हैं। वेदों के मंत्र ऋषियों एवं मुनियों के ज्ञान समाधि की अवस्था में प्रकाशित हुए हैं। वेद वीर रस के काव्य हैं। वैसे तो वेदों को **अनन्ता वै वेदाः** कहा गया है।

उपनिषद् परमेश्वर के निःश्वास बताए गए हैं; जिस प्रकार मनुष्य के निःश्वास अनायास आते–जाते रहते हैं उसी प्रकार वेद की दार्शनिक धारा उपनिषद् परमेश्वर की निःश्वास से निकलते रहते हैं और उसी में विलीन भी होते हैं।

वेद सर्वप्रथम ऋषियों के हृदय में उतरे थे। लोक हित के लिए परमात्मा ने इन वेदों का प्रकाश किया था। स्वयं वेद इन बात के साक्षी हैं कि वेद उसी परमात्मा की वाणी हैः–

''उसे सबके द्वारा बुलाए जाने वाले यजनीय परमात्मा से ऋचाएँ, साम उत्पन्न हुए, उसी से छन्द प्रकट हुए, उसी से यजुः प्रकट हुए।'' (यजु. ई. 1/7)।

वेदोऽखिलो धर्ममूलम। (मनुस्मृति)। धर्म का मूल वेद हैं। धारण करने के कारण इसे धर्म कहा जाता है और यही धर्म प्रजाओं को धारण करता है। जगत की स्थिति धर्म के कारण ही है।

ईश्वर के अनादि ज्ञानों में अनुविद्ध शब्द राशि ही वेद है, जैसे, विचार–ऋग्वेद, क्रिया–यजुर्वेद, भक्ति–सामवेद और एकाग्रता–अथर्ववेद में जो परस्पर सम्बन्ध है, वही सम्बन्ध चार वेदों में भी है। इसलिए ये चारों वेद परस्पर भिन्न न होकर एक ही वेद है।

वेद मानव–जीवन के लिए उपयोगी विविध ज्ञान–विज्ञान की अमूल्य निधि है, इनमें ब्रह्म विद्या, आत्म विद्या, भूत विद्या, नक्षत्र विद्या, कृषि विद्या, वाणिज्य विद्या, औषधि विद्या आदि विभिन्न विद्याओं के स्वच्छ स्रोत प्रस्फुटित हो रहे हैं। विशेषकर भक्ति रस में स्नान कर श्रोता का हृदय नितान्त निर्मल, शान्त और रस विभोर हो उठता है।

पारलौकिक सुखजनक, उच्चारण वाला तथाजन्य ज्ञान से अजन्य जो प्रमाण शब्द हैं, वही वेद है। वेद का लक्षण– अलौकिक

अर्थ बताता है।

पूर्व कल्प की आनुपूर्वी के अनुसार ही उत्तर कल्प की आनुपूर्वी रहती है, उसमें एक भी वर्ण या भाषा का परिवर्तन नहीं होता है।

हिरण्यगर्भ प्रकृति देवतागण परमात्मा के अनुग्रह से पूर्वकल्प भी वेदानुपूर्वी को याद कर लेते हैं, जो सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा को उत्पन्न करता है और जो उसकी बुद्धि में वेदों का आविर्भाव करता है, यही श्रुति इसमें प्रमाण है। ज्ञान तो निराकार और अमूर्त है।

जन्माद्यस्य यतः (1.1.2 ब्रह्मसूत्र)–ब्रह्म देवादि सृष्टि का कर्ता और उपादान कारण है तथा शब्द निमित्त कारण है।

शास्त्रयोनित्वात् (1.1.3–ब.सू.)–परमेश्वर की सर्वज्ञता ब्रह्म ही ऋग्वेदादि शास्त्र के कारण हैं।

अत एव च नित्यत्वम् (1.3.29–ब्र.सू.) – वेद नित्य हैं क्योंकि ईश्वर के समान वे भी जगत की उत्पत्ति में कारण है।

ज्योतिषि भावाच्च (1.3.32–ब्र.सू.)–आकाश स्थित जो ज्योतिर्मण्डल दिन–रात घूमता हुआ जगत को प्रकाशित करता है उसमें आदित्य आदि देवता वाचक शब्द प्रयुक्त हैं।

देह को स्वस्थ और अर्जित रखने के लिए जैसे उचित आहार की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार सूक्ष्म शरीर, मन, बुद्धि आदि के लिए समुचित वेद की आध्यात्मिक खुराक आवश्यक है।

वेदों में ब्रह्मविद्या सर्वोत्कृष्ट महत्वपूर्ण विद्या है, क्योंकि सभी वेदों का मुख्य तात्पर्य ब्रह्म का प्रतिपादन ही है।

जिस प्रकार ईश्वर अनादि–अपौरुषेय है उसी प्रकार वेद भी अनादि–अपौरुषेय हैं। वेद को देव, पितर और मनुष्यों का सनातन–चक्षु कहा गया है। मनु के अनुसार तीनों कालों में इनका उपयोग है और सभी ज्ञान वेद से प्राप्त होता है। वेद ब्रह्म विद्या

के ग्रन्थ भाग नहीं, स्वयं ब्रह्म है–शब्द ब्रह्म हैं।

ऋग्वेद (प्रज्ञानं ब्रह्म)। यजुर्वेद (अहं ब्रह्मास्मि) सामवेद (तत्त्वमसि)। अथर्ववेद (अयमात्मा ब्रह्म)।

तीनों वेदों का ही नाम गरुड़ है। वे ही अन्तर्यामी परमात्मा का वहन करते हैं।

चित्त, जीव और माया भगवान की तीन शक्तियां हैं, उनकी वृत्तियाँ नित्य हैं।

वेद के मंत्र संकेतात्मक एवं प्रायः क्रियात्मक हैं तथा सर्वज्ञानमय होने के कारण उनमें अव्यता तथा बहुर्थी प्रवृति के कारण उनमें अर्थ की नैश्चित्य ही नहीं हो सकता। प्रत्येक मेधावी मंत्र इतना घनीभूत अर्थ वहन करता है कि उसे इतने अन्य शब्दों में स्पष्ट किया ही नहीं जा सकता।

वेद को ईश्वर का ज्ञानमय तप कहा है। निखिल सृष्टि का जो ज्ञान और विज्ञान है, वह सत्य का ही रूप है।

ऋक्, यजुः, साम का अधिष्ठान मन है। मन ही अमृत है। मन से ही सप्त होता यज्ञ का वितान होता है, ऐसे मन पर अधिकार पाने के लिए शिवसङ्कल्प से ही सम्भव है। देव लोक में जो मन रूपी कल्पवृक्ष है, उसकी दिव्य शक्तियों को शिव संकल्पों से जाना जा सकता है। स्वयं अन्तःकरण की प्रेरणा से तथा श्रद्धा युक्त मन से तप में प्रवृत्त होना सब विधानों का एकमात्र सार है।

मनुष्य प्राण और अपान के दो संयुक्त तारों का एक टुकड़ा है। इन्द्र कर्मेन्द्रिय (Motor) का स्वामी है, अग्नि ज्ञानेन्द्रियों/ Sensory का। इन्द्र अध्यात्म अर्थ में आत्मा है।

पूर्व जन्म का किया कर्म नष्ट नहीं होता। कर्म जन्म–जन्मान्तर में आत्मा के साथ लगा रहता है। पुनर्जन्म की अवधारणा एक ध्रुव सत्य है।

पहले किए कर्म का फल सभी प्राणियों को वायु, जल तथा अग्नि आदि के द्वारा इस जन्म में अथवा पुनर्जन्म में मिलता ही है। मृत्यु के उपरान्त जीवात्मा वायु के साथ विचरण करता हुआ जल, औषधि आदि के द्वारा वीर्य में प्रवेश करता है। यमदूत (वायु) जीव का हरण करता है।

वेद तत्त्व बीज अव्यक्त भाव से व्यक्त सृष्टि के रूप में एक तत्त्वमूल है। बहुधा अनेक तत्व हैं। उसी एक का विचार विश्व है। एक तत् है। बहुधा इंद्र सर्वत्र है। एक अव्यक्त भाव है, उस अदृश्य के लिए वेदों में तत् संकेत है। बहुधा को व्यक्त, स्थूल या दृश्य कहते हैं जो एतत् या विश्व या भूत है।

वैदिक वाक्य नित्य हैं। चक्षु ही जमदग्नि, कूर्म ही कश्यप एवं प्राण ही कश्यप है। वाणी (नाद)–ऋग्वेद मन (श्रुति)–यजुर्वेद एवं प्राण (स्वर)–सामवेद है। अग्नि, संवत्सर एवं ब्राह्मण ही वैश्वानर है।

अथर्ववेद को ब्रह्म के समान बताया गया है। अथर्व वेदज्ञ ब्रह्मा ही यज्ञ में आए विघ्नों को दूर कर कर्म को तेजस्वी बनाता है। अथर्ववेद को ही त्रयी (तीनों वेदों का) का सार मानना पड़ेगा। अथर्ववेद अकेला ही चारों वेदों का प्रतिनिधित्व करता है। उच्च/उपांशु ध्वनि मंत्र का धर्म है, वेद का नहीं।

वेदों की आत्मा सत् (त्रिकालाबाधित) ज्ञान है। वेदान्त का अर्थ स्वाधीनता एवं स्वतंत्रता या संसार से सम्बन्धाभाव का ही समर्थन करता है। संसार नामरूप का परिणाम है, वेदान्त हमें शक्ति प्रदान करता है। (स्वामी रामतीर्थ)

यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म। विज्ञान का कार्य यशस्वी कर्मों का विस्तार करना है। वेद शरीर का प्राण वायु यज्ञ है। वेद यानि नारायण साक्षात् अग्नि तत्त्व सर्वाधिक तेजोमय तत्त्व के रूप में हुआ है। विराट पुरुष द्वारा सृष्टि का विस्तार किया गया है। वेद जीवन का संविधान है। यज्ञ कल्याण और आयु का स्रोत है। प्राण

की यज्ञरूपता में प्राण का प्रतिपल क्रियाशीलता तथा जागृति क्रिया प्राण का प्रतिपादन हुआ है।

एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः शास्त्रान्वितः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग्भवति। एक शब्द का भी यदि सम्यग् ज्ञान हो गया, शास्त्रानुसार उसका सही प्रयोग हो सका तो वह स्वर्ग तथा लोक में भी कामनाओं को पूरा करने वाला है।

ध्यान

शुक्लयजुर्वेद का ध्यान—भगवान यजुर्वेद बकरे के समान मुख वाले, पीतवर्ण वाले तथा अक्षमाला धारण करने वाले हैं, वे अपने बाएँ हाथ में बज्र धारण किए हैं। वे सभी प्रकार का ऐश्वर्य तथा मंगल प्रदान करने वाले हैं।

यम् ज्योतिरजं स्मं यस्मिन् लोके स्वर्हितम्।
तस्मिन् मां धेहि पवमानाऽमृतेलोके अक्षितइन्द्रायेन्दोपरिस्वमव।।

(ऋ. 9.114.7)

हे (पवमान) पवित्र सोमः (यम अजस्मंज्योतिः) जहाँ पर अखण्ड तेज है और (यस्मिन् लोके स्वःहितम्) जिस लोक में सूर्य–स्वर्ग–सुख स्थित है, (तस्मिन्) उस (अमृते अक्षिते लोके) अमर और अक्षीण लोक में (मां धेहि) मुझे रख। हेः (इन्द्रो इन्द्रायपरि–स्भव) सोमः तू इन्द्र के लिए बहो।। 7।।

यमानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते।
कामस्य यत्राप्ताः कामा स्तत्रममममृतंभीति इन्द्रायेन्दोपरिस्भव।।

(ऋ. 9.114.11)

(यम आनन्दः च मोदाः च) जहाँ आनन्द और हर्ष, (मुदः प्रमुदः आसते) आल्हाद और प्रमोद–ये चार प्रकार के आनन्द हैं; (यम कामस्य कामाः आप्ताः) जहाँ अमिलापी की सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण होती हैं, (तत्र मां अमृतं कृषि) वहाँ मुझे अमर करो। हे (इन्द्रो) सोमः तू (इन्द्राय परिस्मव) इन्द्र के लिए बहो।।11।।

वेदो नारायणः साक्षात्स्वयम्भूरितिः शुश्रुम।

वेद स्वयं भगवान के स्वरूप हैं। वे (वेद) उनके (भगवान) स्वाभाविक श्वास, प्रश्वास एवं स्वयं प्रकाश ज्ञान हैं।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।। *(ाुक्ल यजुर्वेदीय)*

ॐ वह (परब्रह्म) पूर्ण है, यह (कार्यब्रह्म) भी पूर्ण है। क्योंकि पूर्ण से पूर्ण ही निकलता है, (प्रलय काल में) पूर्ण (कार्य ब्रह्म) का पूर्णत्व लेकर पूर्ण (पर ब्रह्म) ही शेष रहता है।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

अन्त में 'शुक्लयजुर्वेद चयनिका' का सुबोध भाष्य पाठकों के सेवा में प्रस्तुत करते हुए मुझे आशा एवं विश्वास है कि ग्रन्थ का स्वाध्याय उन्हें सुखद अनुभव प्राप्त होगा।

उ.प्र. संस्कृत संस्थानम् एवं जगदानन्द झा प्रशासनिक अधिकारी, उ.प्र. संस्कृत संस्थानम् लखनऊ के प्रति असीम आभार व्यक्त करता हूँ, जिनकी प्रेरणा स्रोत से मुझे यह संग्रह सम्पादित करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है जिन्होंने विशेष रुचि लेकर गम्भीर परिश्रम पूर्वक ग्रन्थ को सर्वाङ्गपूर्ण बनाया है।

यद्यपि ध्यानपूर्वक देखने के बाद इस ग्रन्थ में संभवतः कुछ प्रेस/प्रूफ सम्बन्धी त्रुटियाँ रह गई हैं। सुधी पाठक मुझे क्षमा करेंगे एवं अपने बहुमूल्य सुझावों के देकर अनुग्रहीत करेंगे।

मैं, एतद्द्वारा इन ऋषियों एवं वेद के प्रति नतमस्तक होकर त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये की भावना से यह संकलन/ग्रन्थ उन्हीं को समर्पित करता हूँ।

हरि ॐ तत्सत्

शुक्लयजुर्वेद संहिता

महामहोपाध्याय–सर्वतन्त्रस्वतन्त्र प्रातिभ–श्रीमदुवटाचार्य–विरचित मन्त्रभाष्येण श्रीमन्महीधरकृत वेददीपाख्यभाष्येण।

प्रथमो अध्यायः 1

1-2 हरिः ऊँ। इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायव स्तथ देवो वः सविता प्रार्पयत श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायहव-मध्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनीमीवा अयक्ष्मा मा त्रसोन ईशत माघश सो ध्रुवा अस्मिन्गोपतौ स्यात बह्वीर्थजमानस्य पशून्याहि।।1।।

हरिः ऊँ। इषे। त्वा। ऊर्ज्जे। त्वा। वायवः। स्थ। देवः वः। सविता। प्र। अर्पयत। श्रेष्ठतमायेति श्रेष्ठतमाय। कर्मणे आ। व्यायहवम। अध्न्यारः। इन्द्राय। भागम्। प्रजायतीरिति प्रजावतीरः। अनणीवोः। अयक्ष्माः। मा। वाः। स्तन। ईशत। मा। अघशरः सऽइत्यधशः सः। ध्रुवाः। अस्मिन्। गोपताविति गोपतौ स्यात्। बह्वीः। यजमानस्य। पशून्। पाहि।।1।।

तत्त्वबोधिनी

हे पलाश या शमी वृक्ष की शाखाः वर्षा के लिए तुम्हें और अन्न या बल के लिए तुम्हें काटता हूँ। हे बछड़े! तुम वायु देवता के हो। अप्ताचरो। पुनः तुम्हें सविता देव प्राप्त करावे (= सूर्य डूबते समय वापस आओ)। हे अहिंसा गायों। इन्द्र भाग दूध को अपने ऊघस में सुरक्षित रखो। दूहने के समय श्रेष्ठतम कर्म यज्ञ के निमित्त अत्यन्त दुधारू बनो। सन्तानों वाली रोगरहिता और यक्ष्मादिरहिता होओ। हे गायोः तुम्हें चोर स्ववश में न करके और नही केसरि या व्याघ्रादि। तुम सब तो बस इस गोपति (यजमान)

में ही स्थिर भाविनी होओ। हे शाखा! तुम इस यजमान अनेक (= सभी) पशुओं को सुरक्षित रक्खो।।1।।

2–10 सत्यं देवः अनृतं मनुष्या (1.1.2.17) इति श्रुतेः देवानां सत्यरूपत्वान्तदनुसरति पूर्वकं हविर्ग्रहणं फलपर्यवसायित्वात्सत्यं भवति। देवता स्मृत्यभावे तु मनुष्याणामनृत रूपत्वात्तत्कृतमनुष्ठानं निष्फलत्वादनृतं भवतीति देवतास्मरणमित्यभिप्रायः।

3–15 देववीतये देवतर्पणाय। वाणी (=मंत्र) का विसर्जन (=त्याग) हो (=मंत्र पढ़कर हवि अग्नि में त्यागी जाती है अथवा हविः डालने के पश्चात् उस–2 मंत्र को, सदेवता विसर्जित कर दिया जाता है।

4-18 अग्ने ब्रह्मं गृभ्णीष्व धरुणमस्यन्तरिक्षं ह ह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि, सजातवन्युपदधामि भ्रातृण्यस्य वषाय। धर्त्रभसि दिवं द ह ब्रह्मवनि त्वा क्षमवनि सजातवन्युपदघ्राभि भ्रातृव्यस्य वधाय। विश्वाभ्यस्त्वाशाभ्य उपदधामि चितः स्थोध्वीचितो भृगूणाभङ्गिरसां तपसा तप्यध्वम्।।18।।

हे अग्नेः तुम पुरोडाश रूप अन्न के संस्कारक कपाल को अपने ऊपर वारित करो। हे कपालः तुम पुरोडाश का धारण करने वाले हो। तुम अन्तरिक्ष की दृढ़ बनाओ। ब्राह्मण के द्वारा वरणीय, क्षत्रिय यजमान के द्वारा वरणीय तथा सजातीय यजमान के द्वारा वरणीय तुम कपाल थे। शत्रु के वध के लिए अग्नि के ऊपर धरता हूँ। हे अन्य कपालः तुम पुरोडाश धारक हो। द्युलोक को दृढ़ करो। बाण। यजमान के द्वारा वरणीय तुम द्वितीय–तृतीय कमास्वः (तीन कपरव्य से तीन लोकों को जयकार के पश्चात् अब) तुम चौथे कपाल को सब दिशाओं को विजय करने के लिए मैं अग्नि

पर धरता है। हे कपालों! इस प्रकार एक के पश्चात एक तुम सब उपचित होकर भुगु एवं अंगिरसों के तपरूप अग्नि ताप से प्रतप्त होओ।।10।।

1 5-20 धान्यमसि विनुहि देवा-ताणाय त्वो दरनाय त्वा व्यानाय त्वा। दीर्घाजु प्रर्जितिषायुसे धां देवो वः सविता हिरण्यपाणिः अतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाविना चक्षुषे त्वा महीना पयोऽसि।।20।।

(सिल के ऊपर चावलों को भरकर) हे तण्डुलः तुम पोषक ध ाान्य हो। तुम देवों का पोषण करो। तुम्हें प्राण देने के लिए पीसता हूँ, उदान वायु प्रदान करने के लिए और व्यान वायु प्रदान करने के लिए पीसता हूँ। (न कि हिंसन के लिए) हे तण्डुलों मैं तुम्हे, आयु के लिए, लम्बेबन्धन (=कृष्णा जिन चर्म) पर धरता हूँ। (या पीसता हूँ।) स्वर्णहस्त सविता देव तुम्हें, प्रकाश के लिए, अपने छिन्न रति हाथ से ग्रहण करे। (घृत को डालते हुए) हे घृत तु महती गायों के दूध से सम्बन्धित घृत हो।।20।।

1 6-22 जनयत्यै त्व। संयौमीदभगेरिदभग्रीषो भयोरिष त्वा धर्मोऽसि विच्वायुरुरुप्तथा उस प्रथस्वोरु ते यज्ञपतिः प्रथमाभगिष्टे त्वव मा हिण्सी द्वेवस्तवा सविता श्रपयतु वर्षिष्ठेऽधि नाके।।22।।

हे तण्डुक पिष्टः यजमान के स्वर्गादि के उत्पादनार्थ मैं तुम्हें जलादि से सम्मिश्रित करता हूँ। यह अग्निच्छापुरोडास है और यह अग्नि–साम का। (अग्नि पर घृत चढ़ाकर–) हे घृतः मैं तुम्हें वर्षण के निमित्त तप्त करता हूँ। (पुरोडास को चढ़ाना–) हे पुरोडाशः तुम प्रवर्ग्य हो। तुम सर्वायु हो। तुम उरुप्तथन स्वभाव हो। अतः पूर्णतया विस्तृत होओ। तुम्हें यज्ञपति पूर्ण विस्तार देवे। अग्नि तुम्हारी त्वचा (= ऊपरी पर्त) को यत जला दे। सविता देव तुम्हें श्रेष्ठ स्वर्ग में अधिश्रित (=परिषक्क) करे।।22।।

1 8-27 गायत्रेण त्वा छन्दसा परिगृहामि त्रैष्टुमेन त्वा छन्दसा परिगृहामि जागते त्वा छन्दसा पहिगृहामि। सुक्ष्मा चासि शिवा चासि स्याज्य चासि षर्यस्वती।।27।।

(पूर्व दिशा की ओर बैठकर वेदि खोदने के लिए पश्चिम–दक्षिण–उत्तर में वेदि के आकार को बनाने वाली तीन रेखाओं को स्पनय से खींचते हुए–) हे विष्णोः मैं, तुम्हें गायत्री छन्छ के द्वारा ग्रहण करता हूँ। मिष्टुप एव जगती छन्द द्वारा मैं तुम्हें ग्रहण करता हूँ। हे वेदि भूमेः तुम शोभना हो। तुम शांत हो। तुम सुखस्वरूपा हो। तुम आनंद से बैठने के योग्य हो। तुम अन्नवाली हो और तुम जलवाली हो।।27।।

1 8-31 सवितुस्त्वा प्रसव उत्पुनाभ्यच्छिद्रेण पवित्रेण सर्मस्य रश्मिभिः। सविसुर्पः प्रसव उत्पुनाभ्यच्छिद्वेण परित्रेणः वसोः सूर्यस्य रश्मिभिः। तेजोऽसि शुक्रमस्य मृतभसि धाम नामासि प्रियं देवानामनाघृष्टा देवयजनभरि।।31।।

हे आस्यः सविता देव की अनुज्ञा में वर्तमान में तुम्हें अच्छिद्र पावन–पवन में तथा सूर्य की रश्मियों से पवित्र करता हूँ। हे प्रोसण जलों। सवितादेव की अनुज्ञा में वर्तमान मैं तुम्हें छिद्ररहित पवित्र कारी पतन तथा वासक सूर्य की रश्मियों के द्वारा पवित्र करता हूँ। (घृत को देखना–) हे घृतः तुम तेज हो, बलवीर्य हो। तुम अमृत (=अमरण हेतु) हो। तुम सबकी चित्तवृत्ति को धारण करने वाले स्थान हो। तुमको नमन करने वाले हो। देवों के प्रिय तुम अनाधर्षित यश का साधन हो।।31।।

2-9-12 एतं ते देव सवितर्यज्ञ प्राहुर्बृहस्पतये ब्रह्मणे तेन यज्ञभव तेन यज्ञपति तेन भामव।।12।।

(एतम। ते। देव। सवित। यज्ञम। प्र। आहु। बृहस्पतये ब्रह्मणो।

तेन। यज्ञम। अव। तेनं। यज्ञपतिमितियज्ञ। पतिम। तेन। माम। अक।।12।।

हे द्योतमान अवितर। इस क्रियभ्राण को यजमान तुम्हारे लिए कहते हैं, बृहस्पति और ब्रह्मा के लिए कहते हैं। हे सवितरः उस हेतु तुम यज्ञ की रक्षा करो। उस हेतु तुम यज्ञ स्वामी यजमान को बचाओ और उसी कारण तुम मुझ ब्रह्म (= ऋत्विज) को भी बताओ।

2-10-13 मनो जूतिर्जुषत। भाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञ निमं तनोत्वरिष्टा यज्ञ समिम दधातु। विश्वे देवास इह भादयत्तामो 3प्रतिष्ठ।।13।।

मन के वेग वाला सविता इस आहुत घृत को सेवन करें। बृहस्पतिदेव इस हमारे यज्ञ को अहिंसित रखकर विस्तारित (=पूर्ण) करे। वह इस हमारे यज्ञ को स्वयं धारण करे। इस यज्ञ में विश्वेदेव आनन्दित होवे। वे सब देव यज्ञ को अनुज्ञात करे (= सफल होने का आशीर्वाद देवे)।।13।।

2-11-24 सवर्चसा पयसा सतनूमिरगन्महि मनसा स शिवेन। त्वष्टा सुदत्री विदधातु गायोऽनुमाष्टु त्वा यद्विलिष्टिम्।।24।।

हे त्वष्टरः हम ब्रह्मवर्चस, दुग्धादि (= गायों पुत्रादि और कल्याण) प्रयुक्तमन से संगत होवें। सुष्ठु प्रदाता त्वष्टादेव हमें धन देवे और हमारे शरीर में जो विकार है—उसे सुखरूप बनाओ।।24।।

2-12-26 स्वयं भूरसि श्रेष्ठो रश्मिर्वर्चोदा असि वर्चो में देहि। सूर्य स्थावृतम कवर्ते।।26।।

हे सूर्य! तुम (किसी अन्य के द्वारा निष्पादित न होकर) स्वयं ही उत्पन्न हो। हे हिरण्यगर्भनाम की प्रधान रश्मेः तुम्ही श्रेष्ठ रश्मि हो। मैं (=यजमान सूर्य के आवर्तन करने के समान ही आवर्तन अदक्षिणा करता हूँ (प्रदक्षिणा करना)।।26।।

2-13-33 आधत्त पितरा गर्भ कुमार पुष्करस्मजन। यथेह पुरुषोऽसता।।33।।

कमलों की भावाएँ पहले हुए अश्विनी कुमारों के सदृश पुत्ररूप गर्भ को हे पितरों, तुम मेरी स्त्री में पारित करो। जिस प्रकार वह मेरे घर में पुरुष संख्या को पूरा करने वाला होवे।।33।।

इध्मप्रोज्ञादिपित्रयात्तो द्वितीयोऽध्यायईरितः।।2।। (इति वाजसनेयसंहितापदपाठे द्वितीयोऽध्यायः।।2।।)



अध्याय–3

3-14-7 अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती। व्यख्यन्महिषो दिवम्।।7।।

इस अग्नि का तेज प्राणापान व्यापारों को करता हुआ शरीर के बीच में गमन करता है। यह जठराग्नि ही शरीर में जीवन रूप है। इस तरह वायु तथा सूर्य रूप से समस्त संसार पर अनुग्रह करने वाले अग्नि देव यज्ञानुष्ठान के लिए प्रकाशित होते हैं।।7।।

3-15-8 त्रिश द्वाम विराजति वाक पतङ्गाय धीयते। प्रतिवस्तोरह द्युभिः।।8।।

जो वाणी तीस मुहूर्त रूप स्थानों में शोभाती है। वही पूज्य वाणी अग्नि के लिए उच्चारित होती है। वह नित्य–प्रति की स्तुति करने योग्य वाणी यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों में अग्नि की ही स्तुति करती है।।8।।

3-16-12 अग्निभूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम। ऋपा रेता सिजिन्वति।।12।।

यह आहवनीयादि वेदिस्थ अग्नि द्युलोक का भूर्धा (= शिर सा श्रेष्ठ) = सा उन्नत तथा पृथ्वी का स्वामी है। यह जलों के सार (वर्षण) को प्राणित (= पुष्ट) करता है।।12।।

3-17-16 अस्य प्रत्नामनु द्युत, शक्र दुदुहे अह्वयः।

पयः सहस्त्रामूषिम।।16।।

इस अग्नि के पुरातन निहित दीप्त, शुभ, सहस्रधनों के प्रदाता तथा देवादि को गमनकारी दूध को गायों से अहीर (= दुहने वाले) दुहते हैं।।16।।

3-18-23 राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम।

वर्धमान स्व दमे।।23।।

यज्ञों में शोभमान, सत्य के रक्षक, देदीप्यमान तथा अपने गाहिपत्यादि वेदिगृह में सदा वर्धनशील अग्रि को हम आह्वान करते हैं।

3-19-35 तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।

धियो योनः प्रचोदयात।।35।।

(तत। सवितुरु। वरेण्यम। भर्ग-।

देवस्य।धीमहि। धियः-। यं । मह।

प्रचोदयादितिप्त चोदयात।।35।।)

सवितादेव के उस वरणीय तेज का हम ध्यान करते हैं। वह हमारी बुद्धियों को आन्द्रकूण्य से प्रेरित करें।।35।।

3-20-52 मनो न्वाह्वामहे नाराश सेन स्तोमेन।

पिन्हृणां च यन्मभिः।।53।।

मनुष्यों को प्रशंसा करने वाले स्तोत्र द्वारा हम अपने परागत मन को पुनः स्वशरीर में आह्वान करते हैं पितृजनों के मननीय स्तोत्रों द्वारा भी हम स्वमन को आह्वान करते हैं।।53।।

3-21-53 मनो न्वाह्वामहे नारारा सेन स्तोमेन।

पितृणां च मन्मभिः।।53।।

मनुष्यों को प्रशंसा करने वाले स्तोत्र के द्वारा हम अपने परागत मन को पुनः स्वशरीर में आह्वान करते हैं, पितृजनों के मननीय स्तोत्रों के द्वारा भी हम स्वमन को आह्वान करते हैं।

3-22-54 आ न एतु मन पुनः कतव दक्षाय जीवसे।

ज्योक्च सूर्यं दृशे।।54।।

हमारा मन यश, बल तथा जीवन के लिए पुनः हमारे शरीर

में प्राप्त होवे। चिरकाल तक सूर्य को देखने के लिए भी हमारा मन हमें पुनः प्राप्त होवे।।54।।

3-23-55 पुनर्नः पितरो मनो ददातु देव्योजनः।
जीवं व्रात सचेमहि।।55।।

हे पितृजनों। देवजन हमें पुनः हमारा मन दे देवें। उस पुनः प्राप्त मन के द्वारा हम अपने जीवित पुत्र–पत्नी आदि वर्ग को संगत होवे।।55।।

3-24-60 त्रयम्बकं, यजामहे, सुगन्धि पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्ध नान्मृत्यो मुक्षीय आऽमृतात।
त्र्यम्बकं यजामहे सगन्धि पतिवेदनम।
उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः।।60।।
(त्र्यंबकमितित्रि। अंबकम। यजामह।
सगंधिमितिसु। गंधिम। पुष्टिवर्द्धनमितिपुष्टि
वर्द्धनम। उर्व्वा रुकमिवैत्युर्वारुकम। इव।
बंधनात। मृत्यो। मुक्षीय। मा। अमृतात।
पतिवेदनमितिपति। वेदनम। इत। मुक्षीय।
मा। अमुत-।।6011।।)

सुगन्ध युक्त तथा अन्नादि की पुष्टि (=समृद्धि को बढ़ाने वाले त्रिनेत्रशिव को हम भजन करते हैं। हे त्र्यम्बक पके हुए खरबूजे के समान हम मृत्यु बन्धन से दूर जावे। परन्तु अमृत से नहीं। (कन्याएँ–) सुगन्धवान और पति को प्राप्त कराने वाले त्रिनेत्र शिव को हम पूजती हैं। पके हुए खरबूजे के समान हम कुमारियाँ विवाहोपरान्त, इस पितृगृह से छूट जावे। परन्तु पतिगृह से कभी विमुक्ता न होवे।।60।।

तृतीयऽध्यायः।।3।।

●●●

चतुर्थोध्यायः 4

4-25-24 चित्पतिर्मा पुनातु वाक्यतिर्मा पुनातु देवो मा सविता पुनात्वादि द्रे0। पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुने तच्छकेयम्।।4।।

चित्त का स्वामी प्रजापति मुझे पवित्र करे। वाणी का स्वामी बृहस्पति मुझे पवित्र करे। सविता देव मुझे अछिद्र पावन वायु तथा सूर्य की रश्मियों से पवित्र करे। हे पवित्रपतेः उस तुम्हारे पावनत्व से पवित्र किया हुआ मैं स्वयं को जिस भी मनोरथ के साथ पवत्रि करता हूँ मैं उस कर्म को पूरा कर सकने में समर्थ होऊँ।।4।।

4-26-25 अभि त्य देव सवितारमोण्योः कविकतुयर्चामि सत्यसव रत्न धामभि प्रिय मति कविय। ऊर्ध्वा यस्याऽनतिर्भा अदिद्युतत्सवीमान हिरण्यप्रारमिमीत सु कतुः कृपा स्वः। प्रजाभ्यस्त्वा प्रजास्त्वानुताणतु प्रजात्वमनुप्राविहि।।25।।

उस द्योतमान, द्यावा पृथिवी के अंदर विद्यमान कस्तप्रज्ञ सत्य–आज्ञा, रत्न देने वाले प्रिय–बुद्धिमान एवं कवि सविता देव को मैं पूजता हूँ। ब्राह्मण क्षत्रियादि को स्व–2 कर्म में प्रवृत्त करते मैं जिस सूर्य की अपरिमित प्रभा ऊर्ध्वगामिनी होती रहती है। उस स्वर्णहस्त एवं सुप्रज्ञ सवितादेव ने अपने संकल्प से स्वर्ग को नापा है (=बनाया या प्रदान किया है) हे सोम, संतानों के लिए मैं तुम्हें बाधता हूँ। हे सोम, हमारी सन्तानें तुम्हें प्राण प्रदान करें और तुम भी हमारी प्रजाओं को प्राण प्रदान करो।।25।।

27-35 नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे महो देवाय तदृत सप्रत। दूरे दृश देवजाताय केतवं दिवस्पुत्राय सूर्याय श सत।।35।।

मित्र–वरुण के चक्षुभूत सूर्य के लिए नमस्कार है। हे ऋत्विजों

उस महान देव सूर्य के लिए वह सत्य यज्ञ या सोम परिचरित को दूर से ही दीखने वाले, प्रजापति देव से उत्पन्न प्रज्ञापक तथा द्युलोक के पुत्र (या पालक) सूर्य के लिए स्तोत्र का शंसन करो।।35।।

28-37 या ते धामानि हविषा यजन्ति या ते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञम। गयस्फानः प्रतरणः सुवीरोऽवीरहा प्रचरा सोम दुर्यान।।37।।

हे सोमः तुम्हारे जिन–2 स्थानों को ऋत्विज हवि–से पूजते हैं (= तुम्हारे द्वारा–नहीं–जहाँ–2 यजन करते हैं)। उन सब स्थानों में तुम्हारी प्राप्ति के द्वारा हमारा यज्ञ सर्वत्र व्याप्त होवे। हे सोमः यजमान के घर को बढ़ाने वाले, हे सोमः तुम यजमान के गृहों के स्वच्छन्दता से संचरण करो।।37।।

इति वाजसनेयसंहितापदे चतुर्थोध्यायः।।4।।

●●●

पञ्चमीऽध्यायः 5

29।15 इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निर्दधे पदम। समूढमस्य पा ওঁ सुरे स्वाहा।।15।।

(इदम। विष्णु-। ब्वि। चक्रमे। त्रेधा। निदधे। पदम्। समूढमितिसम्। ऊढय। अस्य। फ ওঁ सुरे। स्वाहा।।15।।

विष्णु ने इस सब कुछ के अतिकान्त किया। उसने तीन बार स्वचरण को रक्खा। उसके इस पांसुल पदमाख में ही यह हमारा प्रञ्पच विधृत है। उस विष्णु के लिए यह हवि : अग्नि में आहुत हे। (मंत्र को पढ़कर दक्षिण हविर्षान शंकट के मार्ग में सोच धरकर वही पर अदवर्यु आहुति देवे।।15।।

30।16 इसवती-धेनुमती हि भूत ওঁ सूयवसिती मन वे दशस्या। व्यस्कम्ना रोदसी विष्णवे ते दाधर्थ पृथिवीममितो मसूखैः स्वाहा।।16।।

(इरावतीऽदूतीरा। व्वती। धेनुमतीऽइतिधेनु। मती। हि। भूतम्। सूयवसिती न सुयवसिनीऽइतिसु। भवसिती। मनवे। दशस्या। व्वि। अस्कम्ना। रोदसीऽइतिरोदसी। व्विष्णोऽइतिविष्णो। विष्णोऽइति विष्णो। एतेऽइत्येते दाधये। पृथिवीया अमित। भसूरवै-। स्वहा।।16।।

हे द्यावापृथिवी। जल या अन्य एवं गायों तुम दोनों हो और यजमान के लिए अपेक्षित यज्ञ–सामनो को देने वाली हो। हे विष्णोः तुमने अपनी किरणों से द्यावापृथिवी को स्तम्भित किया है। पृथ्वी को सर्वतः स्वकिरणों से धारण किया है। उस तुम विष्णु के लिए यह आहुति है।।16।।

31।18 विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि

विममे रजा सि। यो अस्कमायदुत्तर ওঁ सघस्थ

विचकमाणस्त्रे घोरुगायो विष्णवे त्वा।।18।।

(विष्णो। नु। कम् व्वीर्याणि। प्र। व्वोचम्। य ँ। पार्थिब्रानि। व्विममऽइतिव्वि। ममे। रजो ꣳ सि। यँ। अस्कमायत। उत्तरमित्त्युत। तरभ। सघस्छमितिसघ। स्द्धम्। व्विचक्रमाणऽइतिवि। चक्रमाण। त्रेधा। उरुगायऽइत्त्युरु साय। व्विष्णवे। त्वा।।18।।

मैं विष्णु के वीर कार्यों का वर्णन करता हूँ कि जिस विष्णु ने पृथ्वी लोकों का नाप डाला जिस विष्णु ने उत्तम सहस्थान देव लोक को सम्मिलित किया–लम्बी गति उस विष्णु ने तीन पग धरते हुए। उस तुम विष्णु के लिए यह आहुति है।

32।29 प्रतविष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीम कुचरो गिरिष्ठाः। यस्योरूषु मिषु विक्रमणेष्वधि क्षियन्ति-भुवमानि विश्वा।।20।।

वह विष्णु अपने बलवीर्य के द्वारा सर्वत्र संस्तुत होता है। वह कन्दराय और सर्वत्र संचारी सिंह के समान भयंकर है। जिस विष्णु के तीन लम्बे भरे गए अङ्गों के अंदर ही सब लोक लोकात्तर बसे हुए हैं।

33।35 ज्योतिरसि विश्वरूपं विश्वेषां देवाना ꣳ समिति। त्व ꣳ सोम तनूकृभ्दन्यो द्वेषोभ्योउन्यकृतेध्य उरु यत्तासि वरूथ ꣳ स्वाहा जुषाणो अस्तुसज्यस्य वेतु स्वाहा।।35।।

हे आज्य। तुम अनेक रूप ज्योति हो। तुम देवजनों के सुष्ठु उद्दीपक हो। हे सोमः तुम हमें शरीरच्छेदी राक्षसों द्वेषियों तथा शकुकृत दुर्भाग्यों से रक्षा करने वाले हो। इन सबसे बचने के लिए तुम विस्तृत सुरक्षा हो। तुम्हारे लिए यह आहुति है। प्रीयमाण सोम घृत की इस आहुति को स्वीकार करें। सोम के लिए यह आहुति है।

34।43 द्या मा लेखीरत्तरिक्ष या हि ंं सीः पृथिव्या संभेव। अयं ंं हि त्वा स्वधितिस्तेतिजानाः प्राणीनाय महते सौभगाय, अतस्व देव वनस्पते शतबल्शो विरहि सहस्य वल्शाविव।।43।।

(कट कर गिरते हुए वृक्ष को सम्बोधन करते हुए) हे वृक्षः तुम भू लोक को मत खुरच डालो अन्तरिक्ष को तुम हिंसित मत करो। अब तुम पृथ्वी पर शापित होओ, संतीक्षण इस परशु ने तुम्हें देवों से उपयोग रूप परम सौभाग्य को प्राप्त कराया है। अतः वृक्षदेव? तुम शतशनाख होकर पमपुष्पवान होओ और हम भी सहस्त्र पुत्र पौत्रादि के द्वारा सहस्त्रशाख के समान, अभिवृद्ध होवें।।43।। (मंत्र को पढ़कर वृक्ष के कटे हुए स्थान पर एक आहुति देना)।।43।।

3।35।18 इन्धरनास्त्वा शतंं हिमा द्युमत्त ंं समिधीमहि। वयस्वन्तो वयस्कृत ंं सहस्वत्तः सहस्कृतम। अग्रे सपलदम्भ नवदव्वासो अदाभ्यम्। चित्रावसा स्वसि ते पारभशीय।।18।।

हे अग्नेः द्युति युक्त, अन्न प्रदान करने वाले, शत्रु को अभिभूत करने वाला बल देने या करने वाले, शत्रु को दमन करने वाले और अहिंस्य तुम अग्नि को हविरामयुक्त, शत्रु को अभिभूत करने के बल से युक्त तथा सदा अहिंसित हम समिधादि प्रदान करते (=प्रज्वलित करते हुए) सौ वर्षों तक दीपित करते रहें। हे स्पृहणीय वासकारिवि रात्रेः अविनाश के साथ हम तेरे प्रातः छोर को प्राप्त करें (=जीवित रह प्रातः सूर्य के दर्शन करें)।।18।।

3।36।25 अग्रे त्वं नो अत्तम उत त्राता शिवो भवा वरूभ्यः।
वसुरग्रिर्वस्दुश्रवा अच्छा नसि द्युमत्तम ंं रयि दाः।।25।।

हे अग्रे! तुम हमारे लिए निकटतम देव हो और रक्षक हो। तुम हमारे कल्याणकारी तथा गृह के हेतु (=गृहपति) होओ। धन स्वरूप और धनदान के द्वारा विश्रुत तुम अभिमुख्य से हममें व्याप्त

होओ। हे अग्रेः तुम हमें अत्यन्त प्रकाशयुक्त स्वर्णादि धन दो।।25।।

3।37।28 सोमान ᳪ स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते। कक्षीवन्तं य औशिजः।।28।।

हे बृहस्पते। तुम सोम के अभिषवकर्त्ता (=सोमयाज) तथा स्तोत्रा की कक्षीवान के समान (सम्पन्न वा ऋषि) बनाओ–जो (कक्षीवान) उशिक का पुत्र है।।28।।

5।38।29 विष्णोर शटमसि वीष्णोः श्रप्त्रे स्थो विष्णोः स्यूरसि विष्णोद्युवोऽसि वैष्णवमसि विष्णवे त्वा।।21।।

(व्विष्णौ। रराटम। असि। श्रप्त्रेऽइति श्रप्त्रे। स्ह। स्यू ँ। ध्रुव ँ। व्वैष्णवम। विष्णवे। त्वा।।21।।)

(दोनों हविर्धान शकटों के ऊपर बने हुए बाजन की वन्दनवार को छूकर–) तुम विष्णु (= यज्ञ) की ललाटभूता हो। (दोनों छोरों को छूकर–) तुम विष्णु के अधरोष्ठ के समान हो। (रज्जु को छूकर–) तुम विष्णु, की सन्धात्री (=जोड़ने वाली) हो। (गांठ लगाते हुए–) तुम विष्णु की स्किरत्व हो। हे हविर्धान मण्डपः तुम विष्णु देवताक हो। मैं तुम्हें विष्णु देव के निमित्त स्पर्श करता हूँ।।21।।

●●●

षष्ठोध्याय–6

39।5 तद्विष्णो परमं पद ँ सदा पश्यन्ति सूरयः।

दिवीव चक्षुराततम।।5।।

(दिवीवेतिदिवि। इव। आततमित्त्या। ततम्।)

उस विष्णु के परम पद को विद्वान सदा ही देखते हैं, जैसे कि द्युलोक में छार हुए नक्षत्रमण्डलादि को हमारी चक्षु देखती है।।5।।

40।31 मनो मे तर्पयत वाचं मे तर्पयत प्राणं मे तर्पयत चक्षुमे तर्पयत श्रोत्रं मे तर्पयतात्मानं मे तर्पयतः प्रजां ये तर्पयत पशून्मे तर्पयत गणान्मे तर्पयत गणा मे मा वितृष्यान।।31।।

हे जलो। तुम मेरे मन, वाणी, प्राण चक्षुद्वय, श्रोत्रद्वय मेरी आत्मा, सन्तान, पशओं और मेरे सहयोगियों को तर्पित करो। हे जलो, तुम्हारी कृपा से मेरे सहयोगी मुझसे विगत तृष्णा (=भेद को प्राप्त) न होवें।।31।।

41।32 इन्द्राय त्वा वसुपते रुद्रवेत इन्दाय त्वादित्ययंत इन्द्राय त्वामिमातिहने। श्येनाय त्वां सोमममृतेगये त्वा रायस्पोपदे।।32।।

(उपांशुसुवन संज्ञक पत्थर को कृष्णाजिन पर धर कर उसके ऊपर इन पाँच यजुर्मन्त्रों को पढ़कर सोम को डाले) हे सोमः प्रातःसवन में सोमरस के अंशभागी वस्तुओं से युक्त इन्द्र के लिए तुम्हें आध्यान्दिन सवन में सोमभाक आदित्यों से युक्त इन्द्र के लिए तथा शत्रुनाशक इन्द्र के लिए मैं तुम्हें इस पत्थर पर अभिषव के निमित्त करता हूँ।

हे सोमः द्युलोक से श्येन रूप हो सोम को अपहरण करने वाली गायत्री के लिए मैं तुम्हें अभिषुत करता हूँ। (इससे चौथी

बार मुट्ठी भर सोम पत्थर पर धरना)। हे सोम धन और अन्न देने वाले अग्नि के लिए तुम्हें ग्रहण करता हूँ। (इसे पढ़कर पाँचवी वार सोम को पत्थर पर धरना)।।32।।

गायत्री श्येनो भूत्वा दिवः सोममाहरत (6।9।4।10) इति श्रुतेः।

42।33 यत्ते सोम दि वि ज्योतिर्यत्पृथिव्यां यदुरावन्तरिक्षे। तेनास्मै यजमानयोरु शये कृध्यधि वात्रे वोचः।।33।।

(उपाशुसवन पर पाँच वार डाले गए सोम को स्पर्श करते हुए) हे सोमः द्युलोक में जो तुम्हारी ज्योति स्वरूप है, जो विस्तीर्ण अन्तरिक्ष में तुम्हारा ज्योनिर्मय स्वरूप स्थित है, उससे इस यजमान के लिए धन से सम्पन्न विस्तृत स्थान निष्पन्न करो। हे सोमः तुम इस यजमान को धनादि के प्रदाता इप्द्र के समक्ष पक्षपात के साथ कथन करो।।33।।



सप्तमीध्यायः 7

43।19 ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिवयानध्यएयादशस्य। अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थं ते देवा सो देवासो यज्ञमित्रं जुषध्वम्।।19।।

जो देव द्युलोक ग्यारह है, पृथ्वी पर जो देव ग्यारह है और जलों के रहने के स्थान अन्तरिक्ष में भी स्वमहिमा से ग्यारह ही है। वे तुम सब देवजन हमारे इस यज्ञ को प्रीतिपूर्वक सेवन करे।।19।।

44/20 उपयामगृहीतोऽस्याग्रयणोऽसि स्वाग्रयण जहि यज्ञं पाहि यज्ञपति विष्णुरुत्वामिन्द्रियेण पातु विष्णुं त्वं पाह्यमिसवनानि पाहि।।20।।

हे आग्रयणग्रह : तुम उपयामग्रह के द्वारा ग्रहण किए गए हो। तुम आगे ले जाने वाले आग्रयण ग्रह हो। तुम अपने श्रेष्ठत्व के वश हमारी रक्षा करो। यज्ञ की बचाओ यज्ञ के स्वामी यजमान को भी बचाओ। तुम विष्णु को बचावें। तुम विष्णु को बचाओ। हे आग्रयणग्रह। तुम हमारे तीनों सवनों को बचाओ।

45।27 प्राणाय मे वर्चोदा वार्चसे पवस्व व्यानाय मे बर्चोदा वर्चसे पवस्वोदानाय मे वर्चोदा वर्चसे पनस्व वाचे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व क्रतद मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व श्रोत्राय में वर्चोदा वर्च गर्भ्या में वर्चोद सौ वर्चसे पवेयाम्।।20।।

(इन 'प्राण' प्रभृति यजुषों की अवकाश संज्ञा हैं, इनको यजमान से बुलवाए और क्रम–2 से सब ग्रहों को दिखावे) हे उपाशुग्रह : तुम ब्रह्मावर्चस को देने वाले हो। अतः तुम मुझे ब्रह्मवर्चस तथा प्राण देने के लिए स्वकर्म में प्रवर्तित होओ। हे

अन्तर्यायगह : ब्रह्मवर्चस के दाता तुम मुझे ब्रह्मवर्चस देने तथा मेरे उदान की पुष्टि के लिए स्वकर्म में प्रवर्तित हो और ऐन्द्रवायवग्रह : ब्रह्मवर्चस के लिए स्वकर्म में प्रवृत्त होओ। हे मैत्रावरुण ग्रह ब्रह्मवर्चस के देने वाले तुम मेरे यज्ञ, बल तथा ब्रह्मवर्चस के देने लिए स्वकर्म में प्रवर्तित होओ, हे अश्विनग्रह : ब्रह्मवर्चस को देने वाले तुम दोनों मुझे ब्रह्मवर्चस देने तथा मेरी चक्षुओं की शक्ति के पुष्टि के निमित्त स्वकर्म में प्रवर्तित होओ हे शुक्र–मन्थिनग्रहो : ब्रह्मवर्चस को देने वाले तुम दोनों ब्रह्मवर्चस देने तथा मेरी चक्षुओं की शक्ति के पुष्टि के निमित्त स्वकर्म में प्रवृत्त होओ।।20।।

46।28 आत्मने मे वर्चोदा वर्चस पवस्वौजसे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वायुषे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व विश्वाभ्यो मे प्रजाभ्यो वर्चोद सौ वर्चसे पवेश्रम।।21।।

हे आग्रयणगह : ब्रह्मवर्चस के देने वाले तुम मुझे ब्रह्म वर्चस देने तथा मेरी भूतात्मा के बल की प्राप्ति के निमित्त स्वकर्म में प्रवृत्त होओ। हे ध्रवग्रह : ब्रह्मवर्चस को देने वाले तुम तुझे ब्रह्मवर्चस देने तथा मेरे ओज बल वा आयुग्य की पुष्टि के निमित्त स्वकर्म में प्रवृत्त होओ। हे पृतमृद–आहवनीय ग्रहों ब्रह्मवर्चस के देने वाले तुम दोनों मुझे ब्रह्मवर्चस देने और मेरी अक्षय प्रजा की पुष्टि के निमित्त स्वकर्म में प्रवृत्त होओ।।28।।

47।41 उदु त्यं जातवदेसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्य ॅं स्वाहा।।41।।

(उत। ऊँ ऽ इन्त्युम्। न्यम्। जातवेदसमितिजात। व्वेसम। देवम। व्वहन्ति। केतव। दृशे। व्विश्वाय। सूर्यात। स्वाहा।।41।।)

उस जनाने योग्य सब वस्तुओं को स्वप्रकाश के द्वारा जानने वाले या सब पदार्थ को उत्पन्न करने वाले व जानने वाले उस द्योतमान सूर्य को उसकी प्रज्ञापक रश्मियाँ सब के दर्शनार्थ

ऊहर्वाकाश में लाती है। उस सूर्य के लिए यह आहुति है।

48।42 चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मिमस्य वरुण स्याग्रेः। आप्ता द्यावापृथिवी अन्तरिक्ष ॅं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा।।42।।

(चित्रम्। देवानाम। उत। अगात। अनीकम। चक्षु- मित्रस्य। व्वरुणस्य। अग्रे। आ। अप्प्रा। द्यावापृथिवीऽइतिद्यावापृथिवी। अन्तरिक्षम। सूर्य। आत्मा। जगत। तस्क्षुष। च। स्वाहा।।42।।

द्योतमाना रश्मियों का विचित्र समूह यह सूर्य ऊपर आया। वह मित्र, वरुण और अग्नि का चक्षु (=प्रकाश) स्वरूप है। इसने द्यावापृथिवी व अन्तरिक्ष आपूरित कर रक्खा है। यह सूर्य (=परमात्मा) चर–अचर की आत्मा है। इसके लिए यह आहुति है।

49।46 ब्राह्मणमय विदेयं पितृभत्त पैतृमत्यमृषिमार्षेय ॅं सुधातुदक्षिणम्। अस्मद्राता देवता गच्छत प्रदातारभाविशत।।46।।

(यजमान आग्रीघ्र को सम्प्राप्त होता है–) मैं आज उत्तम पिता, पितामह वाले, मंत्रार्थकर्त्ता ऋषिकुलीय = (ऋषियों के कुल को चलाने वाले) और दक्षिणा में सदा स्वर्ण पाने वाले आग्रीघ ब्राह्मण को प्राप्त करूँ। हे दक्षिणा में दीयमान धन : हमारे द्वारा प्रदत्त होकर तुम, दान के पुण्य के निमित्त देवों में प्राप्त होओ।

50।48 क अदात्। कस्मै। काम÷। कामाया कामे÷। काम÷। दाता। काम÷। प्रतिग्रहीतेतिअति। ग्रहीता काम। एतत्। ते।।48।।

कौन देता है? किसको देता है? काम देता है। काम को देता है। काम ही दाता है और काम ही प्रतिग्रहीता है। हे कामः इस प्रकार दाता और प्रतिग्रहीता दोनों के तुम्हारा ही स्वरूप होने से ले–देकर यह सर्वधनादि सब तो तुम्हारा ही है। (यजमान को अपना धनादि देने का अभिमान न करना चाहिए और प्रतिग्रहीता को भी स्वयं कुछ धनादि प्राप्त करने का अभिमान न करना चाहिए।।48।।

अष्टमोऽध्यायः 8

51।4 यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नभादित्यासो भवता मृऽयत्तः आ वोऽर्वाची सुमतिववत्याद ॐ होश्चिया वरिवोवित्तरास-दादित्येभ्यसवा।।4।।

(प्रति। एति। सभ्नम। आदित्या सद। भवत। व्व ँ। अर्व्वाची। सुमतिरितिसु मतिँ। ववृत्यात्। अह होँ। चित। या। व्यरिवोवित्तरेति दवरिपोवित मेरा। असंत्। आदित्त्येभ्य÷। स्वा।।4।।

(आदित्यग्रह में भरे हुए सोमरस को दही से मिश्रित करे)। देवों के सुख के निमित्त यश प्रवर्तित होता है। हे आदित्यों : तुम हमें सुख देते हुए होओ। हे देवोः तुम्हारी अनुग्रहपरा बुद्धि पापी को अत्यन्त धनदा न बने। हे सोमरस : मैं आदित्यों के लिए ही तुम्हें दही से मिश्रित करता हूँ।।4।।

52।12 यस्ते अश्वसनिर्भक्षा यो गोसनिस्तसयत इष्टयंजुषः स्तुतस्तो मस्य शस्तोक्यस्योपहूतो दक्षयामि।।12।।

(यँ। ते। अश्वसनिरित्त्यश्व। सनि÷। यक्षँ। यँ। गोसनिनिरतिगो सनि÷। तस्य। ते। इष्टयजुषऽइतीष्ट। यजुषँ। स्तुतस्तोमस्येतिस्तुत। उक्थस्य। उपहूत स्येत्युप, हूतस्य। उपहूतऽत्त्युपहूतँ। यक्षयामि।।12।।

हे सयव सोमरसः तुम्हारा जो देवों के द्वारा भक्षण किया जाना अश्वों को देने वाला है और गायों को देने वाला है। यजुओं से प्रीयमाण, उदगाताओं के द्वारा स्तूयमान होता ऋत्विजों के द्वारा प्रशस्यमान और अनुज्ञात के द्वारा अनुज्ञायमान मैं उस तुम्हारे मक्ष्य को खाता हूँ।।12।।

53।16 सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा स ॐ शिवेन। त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनुभार्ष्टु तन्वो यद्विजिष्टम।।16।।

हम ब्रह्मवर्चस, जल, शरीर पुष्टि और शुभ मन से संगत होवे। सुदाता त्वष्टादेव हमारे लिए धनों का विधान करें और शरीर का जो पाप या शैथिल्य है–इसे दूर करे। (इससे दूसरी आहुति देना।)।।16।।

54।21 देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित। मनसस्पत इये देव यज्ञ ॅं स्वाहा वाते धाः।।21।।

यज्ञ को समाप्त जानने वाले हे देवों! तुम यज्ञ को समाप्त जानकर अब स्व–स्वस्थान को प्रस्थान करो। हे हमारे मन में विद्यमान यज्ञ करने के संकल्प को पालने (=चरितार्थ) वाले प्रजापते; मैं इस यज्ञ को तुम्हारे हाथ में समर्पित करता हूँ। तुम इसे वायु में धारण करो। यह तुम्हारे लिए आहुति है।

55।40 अदृश्रयस्य केतवो विरश्मयो जनाँ 25 अनु। भ्राजन्तो अग्रयो यथा। उपयामगृहीतोऽसि सूर्याय त्वा भ्राजायेष ते योनिः सूर्याय त्वा भ्राजाय। सूर्य भ्राजिष्ठ। भ्राजिष्ठस्त्वं देवेष्वसि भाजिष्णोऽहं मनुष्येषु भूयासम।।40।।

मनुष्यों के आनुकूल्य को प्राप्तज इस सूर्य की प्रज्ञापिका रश्मियाँ दिखाई दीं। वे अग्नि भी रश्मियों के समान चमकीली है। हे सोमरस! तुम उपयामग्रह के द्वारा ग्रहण किए गए हो। मैं तुम्हें तेजस्वी सूर्य के लिए ग्रहण करता हूँ। हे तेजस्वितम सूर्य! प्रवाशमानों में तुम अत्यन्त तेजस्वी हो। मैं भी तुम परम तेजस्वी की दया से मनुष्यों में परम तेजस्वी होऊँ।।40।।

56।41उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम्। उपयाणगृहीतोऽसि सूर्याय त्वा भ्राजायैष ते योनिः सूर्याय त्वा भ्राजाय।।41।।

विश्व के देखने के निमित्त ज्ञात सर्व विषय उस सूर्य देव के प्रज्ञापक रश्मियाँ ऊपर अन्तरिक्ष में लाती है। हे सोमरस! तुम

उपयामग्रह के द्वारा ग्रहण किए गए हो। मैं तुम्हें तेजस्वी सूर्य के निमित्त ग्रहण करता हूँ। हे सोम! यह तुम्हारा स्थान है। मैं तुम्हें तेजस्वी सूर्य के निमित्त यहाँ धरता हूँ।

57।43 इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते सरस्वति महि विश्रुत्ति। एता ते अध्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रतात्।।43।।

हे अहन्तव्या गाय मनु की पुत्री इडा के समान स्तुत्य रमण कराने वाली, आहवनीय, कामना किए जाने के योग्य आह्लादिका द्युतियुक्ता, अदीना देवमाता अदिति के सदृश, क्षीरवणी, महिमामयी और विशेषरूप से विख्यात यह इतने तेरे नाम है। अब तुम देवों के समक्ष शुभकर्म वाला बखान करो।।43।।

58।60 देवान्दिवे भगन्यज्ञस्ततो या दविणमष्ट मनुष्या नन्तरि क्षमगन्यज्ञसविता या हविणभष्टु पितृन्द्र थिवीमगन्यज्ञस्ततो या द्रविणभष्टु यं कं चं लोक मगन्यज्ञस्ततो मे भद्रमभूत।।60।।

यह यज्ञ द्युलोक में देवों को प्राप्त हुआ। उन देवों की कृपा से यज्ञ का फलभूत प्रभूत धन हमें प्राप्त होवे। अन्तरिक्ष को प्राप्त हुआ। यज्ञ मनुष्यों को प्राप्त हुआ। उस अन्तरिक्ष से मुझे वर्षाधन प्राप्त होवे। पृथ्वी पर होता हुआ यज्ञ पितरों को प्राप्त हुआ। इस पृथ्वी से मुझे स्वणादि धन प्राप्त होवे। किम्बहुना, जिस किसी भी लोक को यज्ञ प्राप्त होवे। मुझे यजमान को उस से ही कल्याण प्राप्त होवे।।60।।

59।63 आपवस्व हिरण्यवदश्ववत्सोम वीरवत्। वाजं गोमत्तभामर स्वाहा।।63।।

(पशु या सोमयाग में यज्ञस्तम्म पर कौवे के बैठ जाने पर उदगाता के द्वारा होम किया जाना चाहिए।) हे सोमः तुम सोना–घोड़ा और पुत्र के फल से समृद्ध होकर हमें प्राप्त होओ। गाय से संगत अन्न तुम हमें लाओ।।63।।

नवमोध्यायः 9

60।7 वाता वा मनो वा गन्धर्वाः सप्तवि ंशतिः।

अग्रेऽश्वमयुञ्जस्ते अस्मिञ्जवभादधुः।।7।।

वायु मन और 27 नक्षत्र गन्धर्व है। भूमि को धारण करने वाले हैं। उन्होंने ही आगे मुख को संयोजित किया था। उन्होंने ही अश्व में वेग को धारण किया था।।7।।

61।11 बृहस्पते वाजं जय वृहस्पतये वाचं वदत वृहस्पति वाजं जापयत। इन्द्र वाजं जयेन्द्राय वाचं वदतेन्द्र वाचं वदतेन्द्र वाजं जापयत।।11।।

हे वृहस्पते! तुम अन्न को विजय करो। हे दुन्दुमिओ; तुम वृहस्पति के लिए ध्वनित करो। तुम वृहस्पति से अन्न विजय कराओ। हे इन्द्र! तुम अन्न के लिए विजय करो। हे दुन्दुभियों! मतुम इन्द्र के लिए ध्वनि निकालो। तुम इन्द्र से अन्न विजय कराओ।।11।।

62।20 आपये स्वाहा स्वाहा स्वापये स्वाहाऽपिजाय स्वाहा कतवे स्वाहा वसवे स्वाहाऽहर्पतये स्वाहा हे भुग्धाय स्वाहा मुग्धाय वैन ंशिवाय स्वाहा विन ंशिन आन्त्यायनाय स्वाहान्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाधिपतये स्वाहा।।20।।

(इन 12 यजुओं से 12 घृताहुतियां देवे। इनमें संवत्सराभिमानी प्रजापति देव की स्तुति है।) सबको प्राप्त करने वाले प्रजापति देव के लिए यह घृताहुति है। शुभता के साथ ...। पुनः–2 उत्पन्न होने वाले। यज्ञस्वरूप या संकल्परूप । बास के हेतु दिन के स्वामी, दिन, मुग्ध होने वाले–मुग्ध होने वाले विनाशी पदार्थों में विद्यमान अन्त्य स्थान में उत्पन्न, अन्त्य, भुवन में उद्भूत भुवन के स्वामी

और सबके अधिपति उस प्रजापति देव के लिए यह घृताहुति है।।20।।

63।21 आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पता चक्षुर्यज्ञेने कल्पाता ҫ श्रोत्र यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पता यज्ञो यज्ञेन कल्पताम। प्रजापतेः प्रजा अभूम स्वर्देवा अगन्माभृता अभूम।।21।।

वाजपेय–याग से मेरी आयु कल्पित होवे। यज्ञ के द्वारा प्राण कल्पित होवे। चक्षु यज्ञ से कल्पित होवे। यज्ञ–2 से कल्पित होवे। यज्ञ से यज्ञ–विष्णु कल्पित हावे। हम प्रजापति देव की प्रजा हो गए। हे देवों! हम स्वर्ग को प्राप्त हुए। हम अमर हो गए। (गेहूँ के ओर से बना हुआ अपूप या गूझा यजमान हुए)।

64।30 देवस्य त्वा सवितुः प्रेसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम। सरस्वत्यै वाचो यत्तुर्यन्मिये दधामि ब्रह्मस्पज्ञेष्टा सामाज्येनामिषिञ्चाभ्यसौ।।30।।

हे यजमान! सवितादेव की अनुज्ञा में विद्यमान मैं अश्विनौ की बाहुओं और पूषा के हाथों के द्वारा नियमन करने वाली सरस्वती से नियभ्य धन में प्रतिष्ठापित करता हूँ। अब तुम अमुक नाम को वृहस्पतिदेव के साम्राज्य से अभिसिञ्चित करता हूँ। =राज्यासन पर बिठाता हूँ।।30।।

65।31 अग्रिरेकाक्षरेण प्राणभुदजयत्तभुञ्जेषभश्विनौ द्वयक्षरेण द्विपदो मनुष्यानुदजयतां तानुञ्जेष विष्णुस्त्र्यक्षरेणभी ल्लोकानुदजयत्तानुञ्जेष ҫ सोभश्चतुरक्षरेण चतुष्पदः प्रशूनुदजयत्तानुञ्जेषम्।।31।।

इन यजुषों की संख्या 'उज्जिति' है। इनसे घृताहुति दी जाती है। अथवा यजमान से पाठ करवाया जाता है। अश्रावय=4, अस्तु श्रोषड=4, यज्ञ–2, ये यजामहे=5, वषट–कारः) = 2। कुल योग = 4x4+2+5+2=17 अक्षर का मन्त्र यह 17 अक्षर का

सप्तदशाक्षर प्रजापति समास और व्यास के साथ यज्ञ के अध्यात्म को विजय करता है।

अग्नि ने एकाक्षर छन्द के द्वारा पंचधा प्राण को विजय किया। मैं (यजमान) भी उस अपने पंच का प्राण को विजय करूँ। अश्विनौ ने दो अक्षर वाले छन्द के द्वारा दो पैरों वाले मनुष्यों को विजय किया। विष्णु ने तीन अक्षर वाले छंदों के द्वारा तीनों लोकों को जीत किया सोम ने चार अक्षरों के द्वारा चार पैरों वाले पशुओं को विजय किया। मैं भी उन चतुष्पद पशुओं को विजय करूँ। ।31। ।

66 ।34 वसबस्त्र्योदशाक्षरेण त्रयोदश ७ँ स्तोममुदजयस्तमुज्जेष ७ँ रुद्राश्चतुर्दशाक्षरेण चतुर्दश ७ँ स्तोममुदजयस्तभुज्जेष-भादित्याः पञ्चदशाक्षरेण पञ्चदश ७ँ स्तोभमुदजयस्तभुज्जेष प्रजापतिः सप्तदशाक्ष्ररेण सत्तदश ७ँ स्तोम भुदजयत्तज्जेषम। ।34। ।

वसुओं ने तरेह अक्षरों वाले छन्द से त्रयोदशस्तोत्र का विजय किया। मैं भी उसे विजय करूँ। रुदों ने 14 अक्षरों वाले छन्द के द्वारा चतुर्दशस्तोय का विजय किया। मैं भी उसे विजय करूँ।

आदित्यों ने पञ्चदश (=15) अक्षरों के छन्दों के द्वारा पञ्चदश स्तोत्र का विजय किया। मैं भी उसे विजय करूँ। अदिति ने 16 अक्षरों वाले छन्द के द्वारा षोडश स्तोत्र का विजय किया। प्रजापति ने 17 अक्षर वाले छन्द के द्वारा 17 स्तोत्र का विजय किया। मैं भी उसे विजय करूँ। ।34। ।

67 ।46 इमं देवा असपन सुवध्वं महते क्षत्राय महते जेष्ठाय महते जानरायायेन्द्रस्यन्द्रियामा इममनुष्य पुत्रमनुष्ये पुत्रमस्यै विश एष वाऽमी राजा सोमोऽस्माक ब्राह्मणाना ७ँ राजा। ।40। ।

हे देवसू (सविता—अग्नि—सेल—बृहस्पति इन्द्र, रुद्र, मित्र—वरुण आदि आठ देवस हवियों के देवता) हविर्भाग देवो। तुम इस

(देवदत्त आदि) यजमान को शत्रु रहित बनाकर महद राज कार्य में प्रेरित करो। महाज्येष्ठत्व के लिए प्रेरित करो, महत जनराज्य (=प्रजातन्त्र) के लिए प्रेरित करो! इन्द्र के परमोत्कृष्ट बल के लिए प्रेरित करो। यज्ञदत्त, व यज्ञश्री आदि के पुत्र इस देवदत्त नामक राजा को इस कुरू–पाञ्चालप्रभुति देशवासियों के आधिपत्य में प्रेरित करो। हे कुरू–पाञ्चाल प्रभृति देशवासियों यह देवदत्त तुम्हारा राजा होवे। परन्तु हे देशवासियों ! हम ब्राह्मणों का राजा तो यह स्तोत्र है।।40।।



दशमोऽयायः 10

68।6 पवित्रे स्थो वैष्णण्यो सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाभ्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। अनिभृष्टमसि वाचो बन्धुस्तपोजाः सोमस्य दात्रमसि स्वाहा राजस्वः।।6।।

हे पवित्रियों! तुम दोनों विष्णु सम्बन्धि पवित्रियाँ हो, सर्वप्रेरक सविता देव की अनुज्ञा में वर्तमान में छिद्र रहित पवित्र तथा सूर्य की रश्मियों के द्वारा इन अभिषेक जलों को पवित्र करता हूँ। राक्षसों के द्वारा अतिक्षुब्ध हे जलों! तुम वाणी के बन्धु तप (= अग्नि) से उत्पन्न और सोम के दान करने वाले हो। यह आहुति है। तुम अभिषेक के द्वारा राजा को उत्पन्न करने वाले हो।।6।।

69।10 अवैष्टा दन्दशूकाः प्राचीभारोह गायत्री त्वावतु रथन्तर ँ साम भिवृत्स्तोमो वसन्त ऋतुर्ब्रह्मद्रविणम्।।10।।

यज्ञ मण्डप के निकट बैठे हुए लम्बे–2 बालों वाले मनुष्य के मुख में तांबे का टुकड़ा डालते हैं। इस यजुः से मृत्यु का नाश होता है। यज्ञ को विनष्ट करने वाले सर्प सुदृश व अत्यन्त दशनशील राक्षस विनष्ट कर दिए जायँ। हे यजमान, अब तुम पूर्व दिशा में विहरण करो। गायत्री तुम्हारी रक्षा करो। 'अमित्वा शरनोनुम' ऋचा पर बना हुआ रधन्तर साम तुम्हारी रक्षा करें। त्रिवृत्स्तोत्र तुम्हारी रक्षा करे। बसंत ऋतु तुम्हारी रक्षा करे। ब्राह्मण का धन या धनुरूप ब्राह्मण तुम्हारी रक्षा करे।

70।15 सोमस्य त्विषिरसि तवेव मे त्विषिभूर्यात।
मृत्योः पाह्योजोऽसि सहाऽस्यमृतमसि।।15।।

हे व्याघ्रवर्मः तुम सोम की कान्ति हो। तुम्हारी कान्ति जैसी हो मेरी भी कान्ति होवे। हे सुवर्ण मृत्यु से तुम मुझे बचाओ। तुम

उत्साहरूप ओज हो। तुम शारीरिक बल हो और तुम्ही अमृत हो।।15।।

70।18 इमं देवाः असपल ७ सुवध्वं महते क्षत्रायमहते ज्येष्ठयाय महते जानराज्यायेन्द्र स्मेन्द्रिभाय। इममयुष्य पुत्रमनुष्यै पुत्रमस्यै विश एष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणाना ७ राजा।।18।।

राजन्य यजमान का अभिसिञ्चन करते समय अध्वर्यु या पुरोहित इस मंत्र को उच्चारण करे। हे देवोः (दशरथ–कौसल्या आदि के) इस (रामादि) पुत्र को (कौशल आदि) प्रजा के निमित्त महान क्षय (=ताज), महान प्रभुत्व और महत साम्राज्य के लिए शत्रुरहित बनाकर प्रेरित करो। इसे इन्द्र के विपुल बल (=दिग्विजय) के लिए प्रेरित करो। हे (कौशल आदि) वासियों! वह सम्प्रति अभिषिक्त राजा ही तुम्हारा यथार्थ राजा है परन्तु हम ब्राह्मणों का राजा तो सोम है।।28।।

72।19 विष्णो र्विक्रमणमसि विष्णोर्विक्रान्तमसि विष्णो कान्तमसि।।19।।

हे मेरे प्रथमपाढ़ प्रक्षेपः तुम व्यापनशील यज्ञ पुरुष जगदीश्वर के प्रथमपाद प्रक्षेप से जीते गए भूलोक हो। हे द्वितीय पाद प्रक्षेप! तुम यज्ञ पुरुष के द्वितीय पादप्तक्षेप से विजित अन्तरिक्ष लोक हो। हे तृतीय पादप्रक्षेपः तुम यज्ञ पुरुष विष्णु के तृतीय पादप्तक्षेप से जीते गए वैकुण्ठ लोक हो।।29।।

73।20 प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परि ताबभूव। यत्काभास्ते जुदुमस्त भो अस्त्वयमभुष्य पितासवस्यपिता वय ७ स्याज्र पतयो रमीणा ७ स्वाहा। रुद्रो यत्ते किवि परं नाम तस्मिन्हुतभष्यमेष्टमसि स्वाहा।।20।।

हे प्रजाओं के स्वामिन! तुमसे भिन्न कोई देव इन सब

भूत–भविष्य–वर्तमान विविध सृष्टि जीवों को उत्पन्न करने और संहार करने में समर्थ नहीं है। जिन–2 पदार्थों की अभिलाषा के साथ हम होम करें–वे–2 पदार्थ होवें। यह इसका पिता है और यह इसका हम धनों की स्वामी होवें। हे रोदनशील अग्रे, तुम्हारा जो भक्षक परम नाम है। हे हविः। उस सर्वभक्षक अग्रि में तुम आहुत हो। तुम मेरे घर में अभिप्रेत हो। यह आहुति है।।20।।

94।24 ह ੪ स शुचिष द्वसुरत्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत। नृषद्वरसदृतसदव्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम् (ह ६ स ँ। शुचिषते। शुचिसदितिशुचि सत। व्वसु ÷। अन्तरिक्ष सदित्यन्तरिक्ष सत। होता। व्वेदिषत। व्वेदिसदितिव्वेदि सत। अतिथि ँ। दुरोण सदितिदुरोण सत। नृषत्। नृसदितिन् सत्। व्वरसदितिवर सत्। ऋत्सदित्मृत सता व्वयोमसदितिव्योम सत। अब्जाऽइत्यप जा ँ। गोषाऽइतिगो सत्। ऋतजाऽइत्युत जा ँ। अद्रिजाऽइत्यद्भिजा ँ। ऋतम्। बृहत्।।24।।)

अपने अहंकार को हनन करने वाला, पवित्रता में स्थित होने वाला, मनुष्यों का प्रवर्तक, वायुरूप से अन्तरिक्ष में स्थित होने वाला, देवों की आह्वान करने वाला, अग्निभाव से वेदि में स्थित होने वाला, सबका पूज्य, आहवनीयादि रूप से यज्ञगृह में, वास करने वाला, प्राणभाव से मनुष्यों में वास करने वाला, उत्कृष्ट स्थानों में बसने वाला, यज्ञ में स्थित होने वाला, मण्डल भाव से आकाश में रहने वाला, जो मत्स्यादिरूप में जलों में उत्पन्न होता है, स्वेदन–अश्ब्ज –पिण्डज–उद्भिजरूपों से पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाला, सत्य में उत्पन्न होने वाला पाषाण में अग्रिभाव या मेघ में जलभाव से उत्पन्न होने वाला, सर्वत्र विद्यमान और महापरिमाण वाला परमात्मा (–अद्वैतभाव) है–उस परमात्मा के पाने के निमित्त मैं पृथ्वी पर उतरता हूँ।।24।।

75।28 ब्रह्मा त्वं ब्रह्माऽसि सविताऽसि सत्यप्रसवः ऐसा उत्तर दे। यजमान पुनः 'ब्रह्मन'। कहे ब्रह्मा पुनः ब्रह्मा न्वं ब्रह्मासि वरुणोऽसि सत्योजा-ऐसा उत्तर दे यजमान-ब्रह्मन ब्रह्मा-ब्रह्मा त्वं रुद्रोऽसि सेशवः। यजमान-ब्रह्मन। ब्रह्मा-त्वं ब्रह्माऽसि-इतना मात्र उत्तर में कहे।

75।30 सवित्रा प्रसवित्रा सरस्वव्या, वाचा त्वष्टा रूपैः पूष्णा पशुभिरिन्द्रेणास्मे वृहस्पतिना ब्रह्मणा वरुणना ज्साग्निना तेजसा सोमेन राज्ञा विष्णुना दशम्या देवतया प्रसूत प्रसर्पामि।।30।।

अभ्यनुज्ञा (=आदेश) कारी सूर्य वाणीरूपा सरस्वती रूपों से उपलक्षित त्वष्टादेव पशुओं से संगत पूषादेव इस प्रत्यक्ष द्रष्टा इन्द्र, देवयाग के ब्रह्मा बृहस्पति, ओजस्वी वरुण, तेजस्वी अग्नि, राजा सोम और दशवे यज्ञदेवता विष्णु के द्वारा आदेश प्राप्त मैं गमन करता हूँ।।30।।



एकादशोऽध्याय–11

77।7 देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसूव यज्ञपतिं भर्गाय। दिव्यो गन्धर्वः केतयूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु।।7।।

हे सवितादेव! तुम यज्ञ को प्रेरित करो और यज्ञकर्त्ता यजमान के भी परम सौभाग्य (स्वर्गादि) फल के लिए प्रेरित करो। स्वर्गस्थ ज्ञान को पवित्र करने वाला और वेदवाणी को धारण करने वाला यह सवितादेव हमारे ज्ञान को पवित्र करे। वाणी का स्वामी वह प्रजापति हमारी इस स्तुति वाणी को ग्रहण करें।।7।।

78।31 संवसाथा ँ स्वर्विदासमीची उरसात्मना।

अग्रियन्तर्मरिष्यन्ती ज्योतिष्मन्तभजस्त्रमित्।।31।।

स्वर्ग (या यज्ञ अथवा सूर्य) को जानने वाले, संगत (= एक चित्त मन) और ज्योतिष्मान व अनुपक्षीण (सतत प्रज्वलित) अग्नि को अपने अंदर धारण करती हुई अब उसी (अग्नि) को स्वशरीर से सम्यक् आच्छादित करो।।31।।

79।50 आपो हि पठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दघातन। महे रणाय चक्षसे।।50।।

(अप ÷। हि। स्थ। मयोभुवऽइतिभय ँ भुजता ँ न ँ। ऊर्ज्जे। दधातन। महे। रणाय। चक्क।।50।।

हे आपः (= जलों) तुम सुख को सम्पन्न करने वाली हो। वह तुम हमें बल या अन्न में विधृत करो–उस महद और रमणीय ब्रह्म के दर्शन के लिए।।50।।

80।51 यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः।

उशतीरिव भातरः।।51।।

(यः ँ। व्व ँ। शिवतमऽइतिशिव तम ँ। रसं ÷। वस्य। भाजयत। इह। न ँ।। उशतीरिवेत्युशती ँ इव। मातर।।51।।

हे आपः (=जलों) : तुम्हारा जो अत्यन्त कल्याणकारी रस है, तुम हमें उसका भागी बनाओ, जैसे अभिलाषा करने वाली माताएँ (अपने शिशुओं को स्वस्तन्य का भागी बनाती है।)।।51।।

81।52 तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वष। आपो जनयथा च नः।।52।।

(तस्मै। अरम। गमाम। व्व ँ। यस्य। क्षयाय। जिन्वय। आप÷। जनपथ। च। न ँ।।52।।

हे आपः। जिस यजमान के यज्ञगृह में तुम हम सबको प्रीणित कर रहे हो, उस यजमान के स्वर्ग के लिए तुम्हें सम्पूर्णता में प्राप्त करें। हे आपः। हमें भी तुम उसी स्वर्ग के योग्य बनाओ या पुत्र–पौत्रादि भाव से सदा बढ़ाते रहो।।52।।

82।62 मित्रस्य चर्षणीघृतोऽवो देवस्य सानसि।
द्युम्र चित्रश्रवस्तमम।।62।।

(चर्षणि घृतऽइतिचषणि धृत÷। चित्यश्श्रवस्तमितिचित्मशयव तत्रम्।।62।।

मानव–प्रजाओं के पोषक, धारक एवं द्योतमान मित्र (=सूर्य) देव के पुरातन संरक्षण तथा अत्यन्त श्रवणीय धनान्न को हम याचित करते हैं।।62।।

83।66 आकूतिमग्रि प्रयुज ंॅ स्वाहा मनो मेधामाग्रि प्रयुज ंॅ स्वाहा चित्तं विज्ञातमग्रि प्रयुज ंॅ स्वाहा वाचो विघृतिमार्गं प्रयुज ंॅ स्वाहा प्रजापतये मनवे स्वाहाग्रये वैश्वानराय स्वाहा।।66।।

अग्निचयन करने के अनुष्ठान से सम्बन्धित हमारे संकल्प को

स्वकर्म में प्रयुक्त कराने वाले अग्नि के लिए यह आहुति है। मन और धारण बुद्धि को स्वकर्म में प्रयुक्त करने वाले अग्नि के लिए यह आहुति है। चित्त और विज्ञान के प्रेरित करने वाले अग्नि के जिस यह आहुति हैं प्रजापति तथा यजु के लिए यह आहुति हैं विश्व के नेता अग्नि के लिए यह आहुति है।।66।।

आमूल्ये प्रयुजे अग्नये स्वाहा।

84।67 विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो करीत सुखाम।

विश्वो राय इषु ध्यति द्युमं वृवीत पुष्यसे स्वाहा।।67।।

फल–प्रापक नेता सवितादेव का मित्रत्व सब मनुष्य वरण करें (=सूर्योदय पर यज्ञादि कर्म करें)। सभी धन की याचना करते हैं और पोषण के लिए अन्न को पावे यह आहुति है।।67।।

85।82 उर्देषां बाहू अतिरमुद्वर्चो अथो बलम्।

सिणोमि ब्रह्मणाऽमित्रानुभयामि श्वाँ 2 ऽअहम।।82।।

मैंने अपने मंत्र बल से अपने राजा की सेना के वीरों के बाहुबल को अत्यन्त बढ़ा दिया है, इनके वर्चस को बढ़ा दिया है और इनके बल (=साहस) को बढ़ा दिया है। साथ ही मैं मंत्र से शत्रुओं को क्षीण बना रहा हे। मैं अपनी को उमत बनाता हूँ।

86।83 अणपतेऽअभस्य नो देह्मनभीवस्य शुषिणः।

प्रप्त नतारं तारिष ऊर्जां नो धेहि द्विपदे चतुष्पते।।83।।

हे अग्नि के पालक दाता अग्नि देव : रोग रहित और बलकारी अन्न का मेरे भाग्य का अंश मुझे प्रदान करो। जो अन्न को देने वाला है उस (यजमादि) को विपत्तियों से पार लगाओ। हम मनुष्य–पशु आदि में इस अन्नादि के खाने–पीने से सर्वथा बलवीय बुद्धि का आधान करो।।83।।

द्वादशोऽध्यायः 12

87।4 सुपर्णोऽसि गरुत्मास्त्रिवृत्ते शिरो गायत्रं
चक्षुर्वृहद्रथत्तर पक्षौ। स्तोम आत्मा छन्दा ᳫं
स्यङ्गानि यजू ᳫं वि नाम। साम ने तनूर्वाभदेव्यं
यज्ञायश्रियं पुच्छ विष्णयाः शफाः। सुवर्णोसि
गुरुत्मान्दिव गच्छ स्वः पत।।4।।

हे सविता देवः तुम गरुड़–स्वरूप हो। त्रिवृत साम तुम्हारा शिर है, गायत्रसाम तुम्हारी आँखे हैं, वृहत्साम और रथत्तर साम तुम्हारे दो रखने है, पञ्चदशस्तोत्र तुम्हारा अन्तःकरण स्थानीय है, सात छन्द तुम्हारा शरीर है। यज्ञायज्ञियसाम तुम्हारी पूँद है तथा होत्रादि धिष्ण्याओं में स्थित अग्नियाँ तुम्हारे पंजे है। हे सवितृदेव : तुम शुभगति गरुडपक्षी हो। तुम द्युलोक में गमन करो और स्वर्ग में उड़ो।

88।5 विष्णोः क्रमोऽसि सपमहा गायत्र छन्द आरोह पृथिवीमनु वित्रमस्वः विष्णोः कमोऽस्वमिमाति त्रैष्टुमं छन्द आरोहान्तरिक्षमनु विकमस्व विष्णोः क्रमोऽस्यरातीयतो हन्ता जागतं छन्द आरौहा दिवमनु विक्रमस्व विष्णोः क्रमोऽसि शभूयतो हन्तानुष्टुम छन्द आरोह दिशाऽनु विक्रमस्व।।5।।

हे मेरे प्रथम पादन्यासः तुम अग्निरूपी विष्णु (= यज्ञदेव) के पादन्यास हो।

तुम शत्रुओं के नाश करने वाले हो। तुम गायत्री छन्द पर आरूढ़ होओ और इस पृथ्वी को विकसित कर लो (=जीत लो)। हे मेरे द्वितीय पादन्यासः तुम विष्णु का प्रक्रम हो। तुम अभिमानी शत्रु का हनन करने वाले हो। तुम त्रिष्टुप छन्द पर आरूढ़ होओ।

तुम अन्तरिक्ष को विकसित कर लो। हे तृतीय पादन्यासः तुम विष्णु का प्रक्रम हो। तुम अढ़ातृत्व आचरण करने वाले को मारने वाले हो। तुम जगती छन्द पर आरूढ़ होओ, और द्युलोक को अनुकात कर लो। हे चतुर्थ पादन्यास तुम विष्णु के चौथे पादन्यास हो। तुम शत्रुत्व का आचरण करने वाले को मारने वाले हो। तुम अनुष्टुप छंद पर आरूढ़ होओ और हम चारों दिशा–विदिशओं की स्व–पराक्रम से अनुक्रमित (विजित) कर लो।।5।।

89।6 अकन्ददग्निः स्तनयन्निव द्यौः सामा रेरिहद्वीरुधः समञ्जन।
सद्यो जज्ञानो वि विमिद्धो अरव्यदारोदसी मानुना भात्यन्त।।6।।

मेघ के समान गरजते हुए अग्नि निनाद कर रहा है। मेघ की भाँति ही वह भी पृथ्वी को सर्वथा चाट रहा है तथा लताओं आदि को व्याप्त कर रहा है। अरणिमन्थन के तत्काल उत्पन्न होकर वह अत्यन्त प्रदीप्त होता है। वह अपने प्रकाश से सब वस्तुओं मात्र को प्रकाशित कर रहा है और द्यावा–पृथ्वी के अन्दर, मेघस्य विद्युत की भाँति, स्वप्रकाश से चमक रहा है।।6।।

90।14 ह ं॑ सः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्वोता वेरिपदतिथिदुरोणसत।
नृवद्वस्सदृतसद्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अहिजा ऋतं बृहत।।14।।

गमनशील, पवित्र स्थान में स्थित होने वाला स्वयं–धन स्वरूप या सबको बसाने वाला अन्तरिक्ष में स्थित होने वाला, देवों का आह्वान करने वाला, वेदि में स्थित होने वाला, मनुष्यों में अठराग्नि या प्राणरूप में स्थित होने वाला श्रेष्ठ स्थानों में स्थित होने वाला, आकाश में वैद्युरूप में स्थित होने वाला, जल में उत्पन्न गवादि में घृतादि रूप में उत्पन्न, सत्य (= यज्ञ) में अरणिमंथन से उत्पन्न, पत्थरों से उत्पन्न स्वयं परमसत्य और अत्यन्त महान् हे यह अग्नि (=तत्स्वरूप परमात्मा)।।14।।

91।31 उदु त्वा विश्वेदेवा अगे भरन्तु चित्तिभिः।
स नो भव शिवस्त्व ँ सुप्रतीको विभावसु।।31।।

हे अग्नेः प्राणस्वरूप विश्वेदेवा तुम्हें, अपनी बुद्धिवृत्तियों के साथ ऊपर धारण करें। सुन्दरमुख और प्रमाधन तुम हो अग्ने हमारे प्रति कल्याणकारी होओ।।31।।

92।48 अगे यते दिवि वर्चः पृथिव्यां यदोष शीघ्रवस्वा यजम्।
यनान्तरिसभुवन्तित्थ न्वेषः स आनुरर्णवो नृचक्षाः।।48।।

हे समर्याद यजनीय अग्नेः तुम्हारा जो आदित्य रूप तेज द्युलोक में है, जो आग्नेयस्वरूप इस पृथ्वी पर है। जो ओषधियों में है और जो मेघस्थ जलों में है। जिस अपने तेज से तुमने विस्तृत अन्तरिक्ष को विस्तारित किया है, वही तुम्हारा आसमान गमनशील और मनुष्यों को देखने वाला है यह तेज (–जो हम इष्ट का रूप में वहाँ चयन कर रहे हैं।)।।48।।

93।58 स वां मना ँ सि सं वता समुचित्तान्याकरम अग्रे पुरीष्दाधियो भव त्वं न इषभूर्ज यजमानायेधेहि।।58।।

हे चिति और उखास्थ अग्नियोंः मैंने तुम दोनों के मन, कर्म और बुद्धिवृत्तियों तक को एक–सी बना दिया है। हे पशुहितकारिन, अग्नेः तुम हमारे पालक होओ और इस यजमान को जल तथा अन्न प्रदान करो।।57।।

94।63 नमः सु ते निर्ऋते तिग्मतेजोऽयस्मयं विचृता बन्धमेतम। यमेन त्वं यम्या संविदानोत्तमे नाके अधिरोहयैनम्।।63।।

हे दुःसह तेजवाली निर्ऋतेः तुम्हें नमस्कार है। लोहे के समान कठिन इस जीवन मृत्यु के बंधन को तुम खोज दो। अग्नि और पृथ्वी से ऐकमन्य को प्राप्त होकर हे निर्ऋतेः तुम इस यजमान को उत्तम स्वर्ग–लोक में अधिरूढ़ करो।।63।।

95।70 घृवेन सीता मधुना समाज्यतां विश्वैदे वैरनुमता मरुद्भिः। ऊर्जस्वती पयसा पिन्वमाना स्मान्सीते पयसाभ्याववृत्स्व।।70।।

विश्वेदेवों और मरुतों के द्वारा सम्मानिता हलपंक्ति (=कूँड़=खेत) मधुर वर्षाजल हो आसिञ्चित होवे। हे सीतेः वर्षाजल से परिसिञ्चिता होकर तुम घृत–दुग्धादि के साथ हमारी ओर अभिमुख होओ। (=खूब अन्न उत्पन्न करो जिससे कि हमारा घर घी–दूध से भर जाय।।70।।

96।72 कानं कामदुधे ध्रस्व मित्राय वरुणाय च।

इन्द्रायाश्विभ्यां पूज्णे प्रजाभ्य ओषधीभ्यः।।72।।

हमारी सारी कामनाओं को दुहाने (=प्रदान करने) वाली हे हल की सीते (=कूँड़)। तुम दया करके मित्र–वरुण इन्द्र–अश्विते–पूषा सन्तानों और ओषधियों के निमित्त अब आज हमारी मनोकामना को पूर्ण करो।।72।।

97।75 या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यास्त्रियुगपुर।

मनैजु बभूणामह ७ शतं धामानि सप्त च।।75।।

पूर्वकाल में तीनों युग (=जाड़ा–गर्मी–बरसात) लेकर सब ऋतुओं के निमित्त जो–2 ओषधियाँ उत्पन्न हुई थीं। मैं उन पककर धूमिल वणे वाली ओषधियों के सौ एवं सात स्थानों या तेजों को जराता हूँ (=सौ वर्ष की आक्षु में मुखमण्डल–गत प्राणों के बने रहने को जानता हूँ।।75।।

98।77 ओष्दधीः प्रतिमोदश्व पुष्पवतीः प्रसूवरीः।

अश्वा इव सजित्वरी बीजघः पारयिग्णवः।।77।।

फूलों वाली फलों को उत्पन्न करने वाली अश्वों के युद्ध को जीतने के समान रोगपुंज को विजित करने वाली व्याधियों को

विविध रूपों से अवरुद्ध करने वाली और हमें पार लगाने वाली हे ओषधियों तुम सर्वथा प्रसन्न होओ।।77।।

99।102 मा मा हि ँ सीज्जनिता यः पृथिव्या यो वादिव ँ सत्यधर्मा व्यानर। यश्चाय श्चन्द्राः प्रथना जजान कस्मै देवाय हविषा विधेन।।102।।

जो पृथ्वी का उत्पादक है अथवा जिस जगत्पालनादि सत्य धर्मों वाले प्रजापति ने इस द्युलोक को व्याप्त किया हुआ है और जिसने प्रथम उत्पन्न होकर आह्लादक जलों (=मनुष्यों) को बनाया है, हम उसी प्रजापतिदेव के लिए हवि से यज्ञादि परिचारण करें।)

(मनुष्या वा आपश्चन्द्राः) इति श्रुतिः। मनुष्या एव हि यज्ञेनाप्नुवन्ति चन्द्रलोक पितृभार्गा नुसारिणः। यश्चापः चायनीयाः प्रथमः शरीरी जनितवान। अपां चायनीयानां कारण भूतानां जननेन यो मनुष्यान जनितवान इति कारणे कार्योपचारः। कस्मै देवाय हविषा विधेम। कारणे कार्योपचारात। प्रथमः शरीरी सत्यधर्मा सत्यं धरतीति सत्यस्य धारमिता स प्रजापतिर्भा माहिंसन्मा हन्तु।

100।103 अन्यावर्तस्व पृथिवि यज्ञेन पयसा सह। वपा ते अग्निरषितो अरोहत्।।103।।

हे पृथिविः तुम हमारे संकल्पित यज्ञ और उसके साधनभूत घृत–दुग्धादि के साथ हमें साम्मुख्य से प्राप्त होओ। प्रजापति के द्वारा प्रेरित यह अग्नि तुम्हारे इस कोमल पृष्ठभाग में आरोहण करे।।103।।

103।107 फवकवर्चाः शुकवर्चा अनूनवर्चा उदियर्षि, मानुना। पुत्रो मातरां विचरन्नुपावसि पृणाक्षि रोदसी उमे।।107।।

हे अग्नेः शुद्ध प्रदीप्ति, निर्मल ज्योति तथा पूर्णप्रभा तुम अपने

प्रकाश से ऊर्ध्वस्थ होते हो। वृद्धावस्था के पुत्र के माता–पिता को पावन करने के समान तुम अपने यजमान को स्वर्ग में पावते हो। इन दोनों द्यावापृथिवी को तुम, हे अग्ने। हविः तथा वर्षा से आपूरित करते हो।।107।।

102।108 ऊर्जो नपाजनातवेद सुशास्तिभि र्मत्दस्व धीतिमिर्हितः।
त्वे इषः सदधुर्भूरिवपेसश्चित्रोतयो वामजाताः।।108।।

जल की पुत्री ओषधियों के पुत्र हे अग्नेः हे उत्पन्नमात्र के ज्ञानिन। अवस्थानादि कार्यों के द्वारा चिति में विधृत तुम शोमन स्तुतियों के द्वारा प्रहष्ट होओ। नानास्वरूप नाना तर्पण और विशिष्ट कुसगोत्रोत्पन्न यजमान तुमने विविध चरु–पुरोगणादि हवियों को होत्र करते हैं।।108।।

103।116 तुभ्यं ता अङ्गिरस्तम विश्वाः सुसितयः पृथक।
अगे कामाय येमिरे।।116।।

हे अत्यन्त अंगारवान अग्नेः अपनी–2 अभिलाषाओं को पूर्ति के लिए समस्त जातियाँ पृथक–2 विधियों से तुम्हें ही अभिसृजित करती है।।116।।

104।117 अग्रिः प्रियेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्व।
सभाडेको विराजति।।117।।

स्वार्गादि प्रिय धामों में सभी भूत–भविष्य मानवों का सहायक या पदार्थों का दाता होकर, एकाकी सम्राट बन शोभित होता है (=स्वर्गादि लोकों में बस अग्नि ही सहायक होता है)।।117।।



त्रयोदशोऽध्यायः 13

105।3 ब्रह्म जज्ञान प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः। स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिभसतश्च विवः।।3।।

(वेतः कान्तो मेधावी वा आदित्य) पूर्व दिशा में सुन्दर किरणों वाला और कमनीय महत सूर्य सर्वप्रथम प्रकट होता है। वह प्रकट होकर अन्तरिक्ष में पास–2 विद्यमान परन्तु असपष्ट तथा उसमें समाहित सत्य (=प्रत्यक्षद्रष्ट) ओर असत (=अप्रत्यक्ष वायु–प्रभृति) को भी स्वप्तकाश से अभिव्यक्त करता है।।3।।

106।4 रिण्यगर्भः समवर्ततागे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाषार पृथिवी द्याभुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।।4।।

(स च जातः उत्पन्नमाम एक एवोत्परत्एयमानहुय सर्वस्यजगत पतिरीश्वर आसीत। ससव पृथियीमन्तरिक्षं द्यां द्युलोक मृतापि चेमा)

सृष्टि के पूर्व में वह प्रजापति ही हैमाण्डभाव से सर्वत्र विद्यमान था। उत्पन्न वह प्रजापति ही इस उत्पन्न भूतमात्र का एकाकी अधिपति था। उस परमात्मा ने ही इस अन्तरिक्ष लोक को धारण किया हुआ है; उसी ने इस द्युलोक को

भूमि लोकत्रयं दाधार धारयति।

और उसी ने इस हमारी पृथ्वी को भी धारण किया हुआ है। हम उस ऐसे प्रजापतिदेव के लिए सर्वदा हविरादि से होम करें।।14।।

रिण्यगर्भदृष्टा प्रजापतिदेवत्या त्रिष्टुप। हिरण्ये हिरण्य पुररुषरूपे ब्रह्माण्डे गर्भ रूपेणावस्थितः प्रजापतिर्हिरण्यगर्भः भूतस्य प्राविजातस्थागे समवति प्राणिणातोत्पतेः उा स्वयं शरीरधारी बभूव।

107।14 असिर्भूर्धा दिवः ककत्पतिः प्रथिव्या अयम। अपा ७ं रेता ७ं भि जिन्यति। इन्द्रस्य त्वौजसा सादयामि।।14।।

यह अग्नि दिन में आदित्य रूप से विद्यमान द्युलोक की भूर्धा है, आकाश का उन्नत स्कन्ध है और इस पृथ्वी का पालक है। यह जलों के बलों को बढ़ाता है। हे औदुम्बरी स्युवे मैं तुम्हें इन्द्र के ओज के साथ वहाँ स्थापित करता हूँ।।14।।

108।18 भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य दार्त्री। पृथिवी यच्छ पृथिवी दृ ७ं ह पृथिवी भा हि ७ं सीः।।18।।

हे स्वयमातृण्णेः तुम भूमि (= सुखों की भावयिनी) हो, पृथ्वी हो; अदितिस्वरूपा हो और समस्त विश्व की धारिका तुम विश्व की धात्री हो। तुम पृथ्वी को संयमित करो। तुम इस चिति को दृढ़ बनाओ। तुम इस चिति को हिसित मत करो।।18।।

109।20 काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती पुरुषः परुषस्थरि। एवा नो दूर्वे प्रतनु सहस्त्रेण शतेन च।।20।।

हे दूब : इस पथरौटी के प्रत्येक भाग और पर्व–2 से या स्वयं के प्रत्येक काण्ड और पर्व–2 से या स्वयं के प्रत्येक काण्ड और पर्व–2 से अंकुरित होती हुई जिस प्रकार तुम स्वयं परम विस्तार को सम्प्राप्त हो रही हो उसी प्रकार हमें भी–हे पूर्वे : शत–सहस्त्र पुत्र–पौत्रों से अभिवृद्ध करो।।20।।

110।22 यास्ते अगे सूर्ये रुचो दिवभातन्वत्ति रश्मिभिः। तामिर्नो अद्य सर्वाभी सचे जनाय नस्कृषि।।22।।

हे अग्नेः जिस तुम अग्नि की ज्योतियाँ सूर्य में समाहित होकर स्व–रश्मियों द्वारा इस द्युलोक को प्रकाशित करती है, आज उन अपनी सभी आभाओं के द्वारा, हे अग्नेः हमारे और इस व्यक्ति (= यजमान) के लिए स्वयं को प्रकाशित करो।।22।।

111।46 चित्रं देवानाममुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुण स्यागेः। आप्ता द्यावापृथिवी अन्तरिक्ष ں सूर्य आत्मा जगतस्तुस्थुषश्च।।46।।

दीप्तिमती किरणों का यह विचित्र समूह तथा मित्र–वरुण–अग्नि (=सर्व त्रिणोकी) का चक्षु यह सूर्योदय को प्राप्त हुआ। उसने द्यावापृथिवी व अन्तरिक्ष को स्वप्रकाश से भर दिया। यह आदित्यमंडलवात परमात्मा जड़–जंगम जगत की आत्मा है।47।।

112।58 इयमुपरि भतिस्तस्यै वाङ्मत्वा हेभत्तोवाच्यः पङि्हैमती पङ्कयै निधनवभिधनपत आगयणऽप्रागयणात्रिणवत्रययस्त्रि ں शौ त्रिणवत्रयास्त्रि ں शाकररैवते विश्वकर्म ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया वाचं गृहातिम प्रजाभ्यो लोकं ता इन्द्रम्।।58।।

यह ऊपर जो चन्द्रस्वरूपा मति (=वाग्) स्थित है, हे इष्ट के : तुम मति (=वाक्) के स्वरूप वाली हो, उस तुम वाक्स्वरूपा को मैं चिति में धरता हूँ। वाणी से हेमन्त ऋतु उत्पन्न हुई। हे इष्टके : तुम हेमनत ऋतु स्वरूपा हो। उस तुम हेमन्त स्वरूपा ईंट को मैं चिति में धरता हूँ। हेमत्तऋतु से पंक्ति छन्द उत्पन्न हुआ। हे इष्टकेः तुम पंक्ति छन्द स्वरूपा हो। उस तुम पंक्ति छन्दस्वरूपिणी को मैं चिति में धरता हूँ। पंक्ति छन्द से निधनवत्स्तम बना। हे इष्टकेः तुम निधनवत्साम के स्वरूप वाली हो। उस तुम निधनवत्सान के स्वरूप वाली ईंट को मैं चिति में धरता हूँ। निधनवत्साम से आग्राययण गह उत्पन्न हुआ। हे इष्टके : तुम आग्रायणग्रह के स्वरूप वाली हो। उस तुम आग्रायणागह के स्वरूप वाली ईंट को मैं चिति में धरता हूँ। आग्रायणगह से निणव और त्रयस्मिश स्तोत्र उत्पन्न हुए। हे इष्टके : तुम मिणव और त्रयस्त्रिश संज्ञक दोनों स्तोत्रों के स्वरूप वाली हो, उस तुम तत्स्वरूपा को मैं चिति में धरता हूँ। उन दोनों स्तोत्रों से क्रमशः

शाक्वर–रैवत्साम उत्पन्न हुए। हे इष्टकेः तुम उन शाक्वर रैवत्सामों के स्वरूपवाली हो। उस तुम उन दो सामों के स्वरूप वाली ईंट को मैं चिति में धरता हूँ। उन दोनों सामों से विश्वकर्मा ऋषि (= वाक्) उत्पन्न हैं। हे इष्टके तुम वागपा हो। तुम्हें मैं चिति में धरता हूँ। उस तुम प्रजापति सृष्ट ईंटें को चिति में धरकर मैं प्रजार्थ वाली को ही पकड़ता हूँ। लोकम्पृण; ता अस्य तथा इन्द्रं विश्वा असि मंत्रों से इन–2 ईंटों को धरना।।58।।



चतुर्दशोऽध्यायः 14

113।13 राज्ञयसि प्राची दि गिवराडसि दक्षिणा दिक्सभ्राडसि प्रतीची दिक्स्वराइस्युदीची दिगधिपल्यसि बृहती दिक्।।13।।

(पाँच दिश्या ईटों को धरना) हे दिश्यासंज्ञक इष्टकेः तुम राजमाना पूर्वदिशास्वरूपिणी हो। तुम तत्स्वरूपा को मैं इस तृतीय चिति में चयन करता हूँ। तुम गायत्री रूपा हो। हे इष्टकेः विशेष रूप से राजमाना तुम दक्षिण दिशा (वत्रिष्टुप् छन्द) के स्वरूप वाली हो। उस तुम वत्स्वरूप को मैं इस तृतीय चिति में चयन करता हूँ। सम्यक राजमाना हे इष्टकेः तुम प श्चिम दिशा (=जगंती छन्द) स्वरूपा हों। तुम तत्स्वरूपा को मैं इस तृतीय चिति में चुनता हूँ। हे इष्टके स्वयं शोभमाना तुम उतर दिशा (अनुष्टुप छन्द) स्वरूपा हो, तुम उस तत्स्वरूपा को मैं इस तृतीय चिति में चयन करता हूँ। हे इष्टकेः तुम सभी प्रकार से पालन करने वाली होकर ऊर्ध्वादिशा (= बृहतीछद) स्वरूपा हो। उस तुम तत्स्वरूपा को मैं इस तृतीया चिति में चुनता हूँ।।13।।

114।18। मा इन्दः प्रभा छन्दः प्रतिभा छन्दो अस्मीवयश्छन्दः प्रश्च्छिन्द उष्णिक छन्दो बृहती छन्दोनुष्टप छन्दो विराट् छन्दो गायत्री छन्दस्मिष्टप् छन्दोजगती छन्दः।।18।।

(पक्ष, पूँछ और धड़ की सधियों में 12–12 छन्दस्य संज्ञक इष्टकाओं को चुनना)

हे इष्टकेः यह पृथ्वीलोक ही 'मा' छन्द है, यह अन्तरिक्ष लोक ही 'प्रतिमा' छन्द है, लोकत्रय से प्राप्त होने वाला यह अन्न ही 'अस्मीवय' छन्द है, पंक्ति, उष्णिक बृहती, जगती छन्द है। तुम मा–प्रभा–प्रतिमा–प्रभृति छन्द–स्वरूपा हो। मैं तुम्हें इस तृतीय चिति में धरता हूँ।।18।।

115।23 आशुस्त्रिवृद्भान्तः पञ्चदशोः व्योमा सप्तदशो धरुण एकमि ॰ँ शः प्रतूर्तिरष्टादशस्तपो नवदशोभीवर्तः सवि ॰ँ ग्शो गर्भा पञ्चविश ओजस्त्रिणव कतुरेकत्रि ॰ँ शः प्रतिष्ठा त्रयास्मि ॰ँ शो विवर्तोऽष्टाचत्वारि शो धर्त्र चतुष्टोमः।।23।।

चतुर्थ चिति का चयन प्रारम्भ होता है। इस कण्डिका के 18 यजुर्षों से 18 ईटों को चुनना) हे इष्टके : तुम व्यापनशील त्रिवृत्स्तोम हो। तत्स्वरूपा तुम्हें मैं इस चतुर्थ चिति में धरता है। अथवा तुम तीनों लोकों की अवर्तनकारी वायु हो। वज्ररूप जो पञ्चदशस्तोत्र है या जो 15 दिन तक घट–बढ़ कर चमकने वाला चन्द्र है। प्रजापति या संवत्सर ही सप्तदशस्तोत्र है। धारक अर्थात् प्रतिष्ठाभूत या आदित्य ही धरुण एकविंशस्तोत्र है। 12 गास, 05 ऋतुएँ और 3 स्वयं संवत्सर ही 08 अवयवों वावाप्रकृष्ट स्वरायुज्य 18 स्तोत्र है। सबको आवर्तन कराने वाला 20 अवयवों का संवत्सर ही सविंशस्तोत्र है, बलप्रद या अत्यन्त बलशायी एवं 22 अंगों वाला सं0 ही 22 स्तोत्र है। सबका पालन–पोषण करने वाला और 23 अंगों वाला सं0 ही 23 स्तोत्र है। सबकी उत्पत्ति का कालरूप आधार तथा 24 अंगों वाला सं0 ही 24 स्तोत्र है। सामके गर्भ वाया या 23 मास होकर सभी ऋतुओं में गर्भ स्वरूप होने वाला यह सं0 हो 25 स्तोत्र है। अत्यन्त तेजस्वी वज्ररूप त्रिनवस्तोत्र ही था। तुम वत्स्वरूपा को मैं इस चतुर्थ चिति में चुनता हूँ। यज्ञ में अत्यन्त उपयोगी 21 स्तोत्र है अथवा सब भूतों का कर्त्ता सं0 ही 31 स्तोत्र है। हे इष्टके स्थिति की हेतु तुम 33 स्तोत्र हो। या सबको स्वयं में प्रतिष्ठित करने वाला और 33 अंगों वाला यह सं0 ही 33 स्तोत्र है।

सूर्य का स्वाराज्य देने वाले 24 स्तोत्र के स्वरूप वाली या सूर्य को स्वाराज्य देने वाले और 34 अंगों से युक्त इस सं0 के

स्वरूपवाली तुम इष्टका को मैं इस चतुर्थ चिति में चुनता हूँ। स्वर्गप्रद 36 स्तोत्र या 36 अंगों वाले और सर्वथा दुःखाभाव वाला संवत्सर के स्वरूप वाली तुम इष्टका को मैं इस चतुर्थ चिति में चुनता हूँ। सामों के आवर्तन–विवर्तन से युक्त 38 स्तोत्र या भूतों को आवर्तन–विवर्तन कराने वाले एवं 38 अंगों वाले सं0 के स्वरूप वाली तुम इष्टका को मैं इस च0 चिति में धरता हूँ। जगत का आध ाार और चारों दिशाओं के द्वारा स्वयमान होने के कारण वायुस्वरूप अथवा त्रिवृत–पंचदश–सप्तदश–एकविशस्तोत्रों के समूह, चतुष्टोत्र के स्वरूपवाली तुम इष्टका को मैं इस चतुर्थ चिति में चुनता हूँ। (इस प्रकार आदि और अन्त में वायुदेवताक ईंटों को धरकर इन सब भूतों को यजमान दोनों ओर से पकड़ लेता है)।।23।।

1. संवत्सये हि सर्वेषां भूतानां वचीस्वितमः।

2. संवत्सरो हि सर्वाणि भूतानि करोति।

3. स्तोत्रानुपदयाति प्राणा वै स्तोत्राः प्राण उवै ब्रह्म ब्रह्मैवैतदुपधातीति (का0 8।4।1।3)

136।24 अग्रेमाणोऽसि दीक्षाया आधिपत्यं ब्रह्म स्पृतं त्रिवृत्सोम ऽइन्द्रस्य भागोऽसि विष्णोराधिपत्यं क्षत्र ॅं स्पृतं पञ्चदशः स्तोत्रो नृचक्षसा भागोऽसि धातुराधिपत्यं जनित्र ॅं स्पृत ॅं सप्तदशः स्त्रोमो मिमस्य भावोऽपि वरुणस्याधिपत्यं दिवो वृष्टिर्वातः स्पृत एकवि ॅं शः स्तोत्रः।।24।।

इन दश यजुषों से दश स्पृत संज्ञक ईंटों को धरना, इनको 'मृत्युयोहिमी' जी कहते हैं। 'प्रजापति ने भूतमात्र को उत्पन्न करने के लिए गर्भ में धारण किया। उन्हें वहाँ मृत्यु ने ग्रहण किया था पकड़ लिया। इस पर प्रजापति ने देवों से कहा कि तुम्हारी सहायता से मैं इन सबको मृत्यु से बचाऊँगा। देवों ने कहा कि

इसमें हमारा क्या लाभ होगा? प्रजापति ने वर माँगने को कहा। कुछ देवों ने अपना भाग माँगा और कुछ देवों ने अपना आधिपत्य माँगा। प्रजापति ने किसी देवता के भाग और किसी देवता के आधिपत्य को स्वीकार करके प्रजा को मृत्यु से बचाया। इसी कारण इन ईटों की 'स्पृत=मृत्युमोचिका' संज्ञा हुई। हे स्पृत इष्टके तुम अग्नि का भाग हो और तुम पर वाणी का आधिपत्य है। उस तुम ऐसी ईंट भाग हो और तुम पर वाणी का आधिपत्य है। तुमने त्रिवृत्स्तोत्र से ब्राह्मण की रक्षा की है। हे इष्टके : तुम इन्द्र का भाग हो। तुमने विष्णु का आधिपत्य है। पंचदशस्तोत्र से तुमने क्षत्रिय जाति की रक्षा की है। मनुष्यो के भले–बुरे कर्मों को देखने वाले देवों का, हे इष्टके : तुम भाग हो। तुममें धाता का आधिपत्य है, सप्तदश स्तोत्र से तुमने वैश्यजाति को मृत्यु से बचाया था। हे इष्टकेः तुम मित्र (=प्राण) का भाग हो। तुम पर वरुण (=अपान) का आधिपत्य है। एकविंशस्तोत्र से तुमने द्युलोक से वृष्टि को व वायु को सुरक्षित किया था। तुम्हें मैं इस चतुर्थ चिति में चुनता हूँ। ।24 ।।

117 ।25 वसूनां भागोऽसि रुद्राणामाधिपत्यं चतुष्पात्स्पृतं चतुर्वि ँ शः स्तोत्र आदित्यानां भागोऽसि मरुताभाधिपता गर्भाः स्पृताः पञ्चवि ँ शः स्तोमोदित्यै भागोऽसि पूष्ण आधिपत्यभोजः स्पृतं त्रिणवः स्तोमे। देवस्य सवितुभागोऽसि बृहस्पते राधिपत्य ँ समीचीर्दिशः स्पताश्चतुष्टोमः स्तोमः।।25।।

हे इष्टकेः तुम वसुओं का भाग हो। तुम पर रुद्रों का आधिपत्य है। 24 स्तोत्र के द्वारा तुमने चार पैरों वाले गवादि की रक्षा की थी। उस तुम्हें मैं इस चतुर्थ चिति में चुनता हूँ। हे इष्टकेः तुम आदित्यों का भाग हो। तुम पर मरुतों का आधिपत्य है, 25 स्तोत्र से तुमने सभी प्राणियों के गर्भों की मृत्यु से रक्षा की है। तुम्हें मैं

चयन करता हूँ। हे इष्टके: तुम अदिति (= पृथ्वी) का भाग हो। तुम पर पूषा का आधिपत्य है। त्रिणवस्तोत्र से तुमने ओज बल की रक्षा की है। तुम्हें मैं चयन करता हूँ। हे इष्टके: तुम सवितादेव का भाग हो। तुम पर बृहस्पति का आधिपत्य है। तुमने चतुष्टोमस्तोत्र से सर्वसंचार योज्या दिशाओं को बचाया है। तुम्हें मैं चयन करता हूँ।

118।28 एकयास्तुवत प्रजा अधीयत्त प्रजापतिरधिपति रासीत्तिसृमिरस्तुवत् ब्रह्मासृज्यत ब्रह्मणस्वतिरधि पतिरासी त्पश्चमिरस्तुवत भूतान्यसृज्यन्त भूतानां पतिरघ्रिपतिरासीन्सप्तमिरस्तुवत सप्त ऋषर्योऽसून्य धाताफिपतिरासीत्।।28।।

('सृष्टि' संज्ञक 18 ईटों का चुनना) प्रजापति ने एक वाणी से परमात्मा का स्तवन किया। तब प्रजाएँ उत्पन्न होने के लिए सम्मुख धरी गई (वे उत्पन्न हुई)। उस समय उन प्रजाओं का प्रजापति ही एक स्वामी था। प्रजापति ने प्राण–उदान–व्यान से स्तुति की। तब ब्राह्मण की सृष्टि की गई। ब्राह्मणों का अधिपति ब्रह्मणस्पति था। प्रजापति ने चार प्राणों और पाँचवें मन से स्तुति की। तब भूत (=अन्य प्राणी) उत्पन्न किए गए। उन उत्पन्न प्राणिमात्र का अधिपति भूतपति था। प्रजापति ने सात शिरस्य प्राणों से परमात्मा की स्तुति की। तब सप्तर्षि उत्पन्न हुए। उनका अधिपति घाटा था।।28।।

119।29 नवमिरस्तुवत पितरोऽसृज्यन्तादितिरधिपस्यासी देकादशामिर स्तुवत ऋतवोऽस्सृज्यन्तार्वव। अधिपतय आसस्त्रदर्शामरस्तुतवत मासा असृज्यन्त संवत्सरोऽधिपतिरासीत्पञ्चशमिरस्तुवत क्षत्रमरुज्यतेन्द्रोऽधि ापतिरासीत्सप्तदशमिरस्तुवत ग्राम्या: पशवोऽसृज्यनत वृहस्पतिरधि ापतिरासीत्।।29।।

प्रजापति ने सात शिरस्थ और दो निम्नस्य प्राणों से परमात्मा की स्तुति की। तब पितरों की सृष्टि हुई। अदिति उनकी स्वामिनी थी। प्रजापति ने 11 प्राणों से स्तुति की। तब ऋतएँ उत्पन्न हुई। उन ऋतुओं के अधिष्ठात देवता ही उनके अधिपति थे। 13 प्राणों का स्तवन किया। तब क्रमप्राप्त 12 और लौदे को लेकर 13 मास उत्पन्न हुए। संवत्सर उनका अधिपति था प्रजापति ने 15 प्राणों से स्तवन किया। तब क्षत्रिय उत्पन्न हुआ। पशु उत्पन्न किए गए। बृहस्पति उनका अधिपात था।।29।।

120।30 नवदशमिरस्तुवत शूद्रार्यावेसृज्येतामहोरात्रे अधिपत्नी आस्तामेकविं ᳪ शत्यातवतैकशफाः पशवोऽसृज्यन्त वरुणोऽधिपतिरासीत्रयोविं ᳪ शत्यास्तुत क्षुद्राः पशवोउसृज्यन्त पूषाधिपतिरासीलञ्चविं ᳪ शत्यास्तुवतारण्याः पशवोऽसृज्यत्त वायुरधिपतिरासीत्सप्राणिं ᳪ शत्यास्तुवत द्यावापृथिवी व्यता वसवो रुद्रा आदित्या अनुव्यायस्त एवाधिपतय आसन।।30।।

19 प्राणों से स्तवन किया। तब शूद्र और वैश्य उत्पन्न हुए। उनके स्वामी अहोराम थे। 24 प्राणों से स्तवन किया। तब एक खुर वाले पशु सृष्ट हुए। वरुण उनका अधिपति 4, 23 प्राणों से स्वतन किया। क्षुद्र पशु सृष्ट हुए पूषा उनका अधिपति था। 25 प्राणों से स्तवन किया। जंगली पशु सृष्ट हुए। वायु उनका अधिपति था। 27 प्राणों से स्तवन किया। तब द्यावापृथिवी पृथक हुए। वसु–रुद्र–आदित्यों ने पृथवत्त्व सम्भव किया। वे ही द्यावापृथिवी के अधिपति हुए।।30।।



पञ्चदशोऽध्यायः 15

121।8 प्रतिपदसि प्रतिपदे त्वानुपदस्यनुपदे त्वा सम्पदसि सम्पदे त्वा तेजोऽसि तेजसे त्वा।।8।।

हे इष्टकेः तुम अन्नस्वरूप हो। अन्न के लिए मैं तुम्हें चयन करता हूँ। हे इष्टकेः तुम अनुपद (अन्न) स्वरूपा हो। अन्न के लिए तुम्हें वेदि में चयन करता हूँ। हे इष्टकेः तुम सम्पद (= अन्न) स्वरूपा हो। सम्पद के लिए मैं तुम्हें चयन करता हूँ। हे इष्टकेः तुम तेज (= अन्न) स्वरूपा हो। वेग के लिए मैं तुम्हें चयन करता हूँ।।8।।

122।10 राज्ञयसि प्राची दिग्वसवस्ते देवा अधिपतयोऽग्निर्हेतीनां प्रतिधर्ता त्रिवृन्त्वा स्तोमः पृथिव्या ँ श्रयत्वाज्ययुक्यमव्यथायै स्तभ्नातु रथन्तर ँ साम प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्ष ऋष्पयस्तेवा प्रथमजा देवेषु दिवो गात्रया वरिम्णा प्रयन्तु विधिर्ता चायगधिपतिश्च तेरुवा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे एवर्गे लोके यजमानं च सदियन्तु।।10।।

हे इष्टिक! शोभमाना तुम प्राची दिशा के हो। तुम्हारे पालक देवता वसुगण है। शत्रु के द्वारा प्रयुक्त शास्त्रास्त्रों का निवारण कर्त्ता अग्नि है। त्रिवृत्स्तोत्र तुम्हें पृथ्वी पर उठावे, प्र वो देवाम अग्नेय (ऐव्रारा 40) प्रभृति आज्यसंज्ञक उक्थशस्म अवकता के लिए तुम्हें स्तम्सित करे। अन्तरिक्ष लोक में प्रतिष्ठा के लिए हे इष्टकेः तुम्हें रथन्तरसाम स्तम्भित करे। प्रथमोत्पन्न सप्तप्राण द्युलोक के विस्तार के अनुरूप ही देवौ में तुम्हें प्रथित करें। धारक वाक और अधिपति मन भी तुम्हें प्रथित करें। हे इष्टकेः यह सब ऐकमत्य को प्राप्त होकर स्वर्गलोक में तुम्हें तथा यजमान को प्रतिष्ठित करें।।10।।

123।14 अधिपत्यसि बृहती दिग्विश्वे ते देवा अधिपतयो बृहस्पतिर्हेनीनां प्रतिधर्ता त्रिणवत्रयस्त्रि ँ शौ त्वा स्तोमौं पृथिव्या ँ श्रयतां वैश्वदेवाग्निमारुते उक्थे अव्यथायै स्तभ्नीता ँ शाकररैवते सामनी प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्ष ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रयतु विधर्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकरस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु।।14।।

हे इष्टकेः तुम सर्वपालनकर्मी ऊर्ध्वदिशा हो। विश्वेदेवाः तुम्हारे अधिपति देवता है। शत्रु के आयुद्यो का निवारक बृहस्पति देव है। त्रिणव त्रयास्मिंशस्तोत्र तुम्हें पृथ्वी में उच्छित करें। 'तत्सवितुवृणीमहे' वैश्वदेवशस्त्र और 'वैश्वानराय पृथुपाजसा आग्निमारुत–शस्त्र तुम्हें अचणत्व के निमित्त दृढ़ धारण करें। अन्तरिक्ष में प्रतिष्ठित होने के लिए शाक्वर और रैवत्साम तुम्हें दृढ़ करें प्रथमोत्पन्न प्राण तुम्हें द्युलोक के उरुत्व एवं विस्तार के समान ही देवों में प्रथित करें। वाक एवं मन के अभिमानी देवता तुम्हें प्रथित करें। वे सब देवगण ऐकमत्य को प्राप्त होकर द्युलोक के उत्तम स्थान स्वर्ग में यजमान और तुम्हें धारण करें।।14।।

124।20 अग्सिर्भूर्था दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्। अपा ँ रेतां ँ सि जिन्वति।।20।।

द्युलोक की मूर्धा के समान (=अत्यन्त श्रेष्ठ), अत्यन्त महान् और पृथ्वी का स्वामी यह अग्नि जलों के काण (=मेधों) को प्रीणित करता है (=आहुति के परिणाम में वर्षा कराता है।)।20।।

125।21 अयमग्िः सहस्त्रिणो वाजस्य शतिनस्पतिः। मूधा कवी रमीणाम्।।21।।

यह अग्नि शत–सहस्त्रमूल्यक अन्न का स्वामी धनों की मूध ार्ा (=श्रेष्ठधनस्वरूप) और कानतदर्शी है। (हम उसकी स्तुति करते हैं।)।।21।।

136।22 त्वायगे पुष्वारादढयथर्वा निरमन्थत। मूर्भो विश्वस्य वाद्यतः।।22।।

हे अग्नेः सभी ऋत्विजों में श्रेष्ठ अथवा ऋषि ने तुम्हें सर्वप्रथम कमलपम के ऊपर मन्थन किया था।।22।।

127।38 भद्रो नो अगिराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अहवरः। भद्रा उत प्रशस्तयः।।38।।

हे सुष्ठु ऐश्वर्यवन अग्नेः आहूयमान चित्यग्नि कल्याणकारी होवे और उसको दान हमारे लिए कल्याणकारी होवे। उस अग्नि के निमित्त क्रियमाण यज्ञ भी कल्याणकारी होवे। हमारी अग्नि सम्बन्धी सम्पादित स्तुति–प्रशास्तियाँ कल्याणकारी होवे।।38।।

128।49 येन ऋषयस्तपसा सत्रभायन्निन्धाना अग्रि ॳ स्वराभरन्तः। तस्मिभहं निदधे नाके अग्नि यमाहुर्मनवस्तीर्णबर्हिषम्।।49।।

मन व इन्द्रियों के ऐकाग्रयरूप जिस परम तप के द्वारा अग्नि को प्रज्वलित करते हुए तथा यजन के फलभूत स्वर्गलाम के द्वारा स्वर्ग को प्राप्त करते हुए मुनिनों ने यज्ञ को पूर्ण किया था। उसी तप के प्राप्त होने पर (=मन व इन्द्रियों को एकाग्र करके) मैं (=यजमान) स्वर्गलोक–निमिन्तक अग्नि का आधान करता हूँ–कि जिस अग्नि को विचारशीलों से नीर्णवहिषे (=यजनीय) कहे है।।49।।

129।51 आ वाचो मध्यमरुहद्भुरव्यरयमगि सत्पतिश्चेकिताना पृष्ठे पृथिव्या निहितो दविद्युतदधस्पदं कृणुतां ये प्रतन्यवः।।51।।

तीनों लोकों का भरण करने वाला, श्रेष्ठों का स्वामी तथा अपने उपासकों को जानने वाला यह अग्नि चयन–स्थान पर आरूढ़ हुआ। वेदि के मध्य में निहित यह अग्नि प्रद्योतित होता है।

यह अग्नि हमारे उन शत्रुओं को पददलित कर दे, जो हमारे प्रति सेना चढ़ा की कामना करते हैं। ।51 ।।

130 ।54 उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्ते स ँ सृजेथामयं च अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन्विश्वे देवा यजमानश्च सीदत।।54।।

हे अग्नेः तुम प्रज्वलित होओ और यजमान को भी जागृत बनाये रखो (=यजमान सदा जागरुक रहकर यजन करता रहे)। यह यजमान इष्ट (=यज्ञादि के फल) और पूर्व (=कृप–धर्मशाला आदि बनवाने के फल संगत होवे। हे विश्वेदेवोः इस उत्तम द्युलोक रूप सह स्थान में यह निष्कल्मष यजमान चिरकाल तक स्थित रहे। ।54 ।।

131 ।64 परमेष्ठी त्वा सादयतु दिवस्पृष्ठे व्यचस्वती प्रथस्वती दिवं यच्छ दिवं ह ँ ह दिवं मा हिं ँ सीः। विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय। सूर्यस्त्वामिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाङ्गिरस्वद्भुवे सीदतम।।64।।

हे इष्टकेः परमेष्ठी प्रजापति ही तुम सावकाश व विस्तारशीला को द्युलोक के उत्तम स्थान में स्थापित करें। तुम द्युलोक को हमें प्राप्त कराओ। द्युलोक को दृढ़ बनाओ। तुम द्युलोक को हिंसित मत करो। समस्त प्राण–अपान–वयस–उ दान, प्रतिष्ठा और संचरण के लिए। महवी कल्याण परम्परा की छाया व शांति के साथ–2 सूर्य तुम्हारी रक्षा करे। हे इष्टकेः उस सूर्य अधिदेवता के द्वारा अन्दशासित होकर तुम हमारी इस चिति में ध्रुवभाव से स्थित होओ; जैसे कि तुम अंगिरा ऋषि के यज्ञ में धुवता से स्थिर हुई थी। ।64 ।।

132 ।65 सहस्त्रस्य प्रमासि सहस्त्रस्य प्रतिभासि सहस्प्रस्योन्मासि साहस्मोऽसि सहस्त्राय त्वा।।65।।

हे वेदिकेः तुम सहस्त्र ईटों का सबुद्ध हो। तुम सहस्त्र ईटों की प्रतिनिधिभूता हो और तुम सहस्त्र की तुला हो। तुम सहस्त्र के मूल्य को हो, और सहस्त्र फल की प्राप्ति के लिए हो। मैं तुम्हें प्रोश्रित करता हूँ। ।65।।



षोडशोऽध्यायः 16

133।41 नमः शभवाय च मयोभवाय च नमः शकराय च मयस्कशयं च नमा शिवाय च शिवतराय च।।41।।

सुख स्वरूप को नमसकार है। कल्याणमय को नमस्कार है। सुखकारी को नमस्कार है। कल्याणकारी को नमस्कार है। शिव–स्वरूप को नमस्कार है। अत्यन्त शुभस्वरूप को नमस्कार है।।41।।

134।49 या ते रुद्र, शिवा तनूः शिवा विश्वाहा मेषजी शिवा रुतस्य मेषजी तया नो मृदु जीवसे।।49।।

हे रुदः तुम्हारा जो शरीर अत्यन्त शान्त है, जो सदा ही शान्त व ओषधि स्वरूप है और शरीर के रोगों की एकमात्र ओषधि ा है–अपने उसी शरीर के द्वारा जीवन के लिए हमें प्रसनन करो।।49।।

135।51 मीढुष्टम् शिवतम शिवो नः सुमना भव। परमे वृक्ष आयुध निधाय कृत्ति वसान आचर पिनाकं बिभदाराहि।।51।।

हे अत्यन्त सेचनसमर्थः हे अत्यन्त कल्याणकारिनः कल्याणस्वरूप तुम हमारे प्रति प्रसन्नचित होओ। तुम अपने ध ानुषादि को किसी ऊँचे वृक्ष पर धर कर तथा चर्म को धारण करके भ्रमण करो। अपने पिनाक को धारण किए हुए हमारे निकट आओ।।51।।

136।52 विकिरिद्र विलोहित नमस्ते अस्तु भगवः।

यास्ते सहस्म ںً हेतयोऽन्यमस्मभिवपन्तु ताः।।52।।

हे बाणों को बरसाने वाले : हे विशिष्ट रक्ताम हे भगवन :

तुम्हें नमस्कार है। तुम्हारी जो सहस्त्र हेतियाँ (=बीमारियाँ) हैं, वे हमारे शत्रु फट पड़े।।52।।

137।54 असंख्याता सहस्माणि ये रुद्रा अधि भूम्याम तेषां ॕ सहस्मयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि।।54।।

भूमि के ऊपर शहस्त्रों जो असंख्य रुद्र है उन सबके धनुषों को हम मंत्रबल से झुकाए देते हैं।।54।।



सप्तदशोऽध्यायः 17

138 ।2 इमा मे अग्र इष्टका धेनवाः सन्त्वेका च दशं च दशं च शतं च सहस्त्रं शतं च सहस्त्रं च सहस्त्रं चायुत चायुतं च यिुतं च नियतु च प्रयुतं चार्बुद चन्यर्क द च समुद्रश्च मध्यं चान्तेश्च परार्धश्चैता में अग इष्टका धेनवः सन्त्वमुत्राभुष्मिल्लोके।।2।।

(सस्वर जप करना–) हे अग्नेः पाँचों चितियों में जो ईटें चुनी गई हैं, वे तुम्हारे प्रसाद से हमें अभिमत फल को दोहने वाली कामधेनु बन जाए। जो संख्या में 1–10–10^2–10^3–10^0–10^5–10^6–10^7–10^8–10^9–10^{10}–10^{11}– 10^{12}–10^{13}–10^{14}–10^{15} आदि–2 है। हे अग्नेः इतनी यह ईटें तुम्हारी कृपा से मेरे लिए इस लोक में और परलोक में कामधेनु बन जाए।।2।।

139 ।3 ऋतवः स्थ ऋतावृध ऋतुष्ठाः स्थ ऋतावृधः।
धृतश्चयुतो मधुश्चयतो विराजो नाम कामदुधा
अक्षीयमाणाः।।3।।

हे इष्टकाओ : तुम बसन्तादि ऋतुओं के स्वरूप वाली यज्ञ को बढ़ाने वाली और प्रत्येक ऋतु के यज्ञ में स्थिर रहने वाली हो। तुम घृत क्षरण करने वाली, मधु चुआने वाली विराजसंज्ञका और कभी क्षीयमाण न होने वाली लोकम्पृणा ईटें साक्षात कामधेनु है।

140 ।9 स नः पावक दीदिवोऽगे देवाँ 211 इहावह। उप यज्ञ ॳ हविश्च नः।।9।।

हे शोधकः देदीप्यमान अग्नेः तुम देवों को यहाँ लाओ और उन्हें हमारी हदिः प्राप्त कराओ।।9।।

141।14 ये देवा देवेष्वधि देवत्वभायन्ये ब्रह्मणः पुरएतारो अस्य। येभ्यो नऋते पर्वते धाम किंचन न ते दिवो न पृथिका अधि स्त्रुषु।।10।।

जो प्राणादि देवता इन्द्रादि देवों के शरीरों में बस कर देवत्व को प्राप्त हुए जो इस जीव के साथ अग्रगामी होते हैं और जिनके बिना कोई भी शरीर गति नहीं कर सकता, वे प्राण देवता न हो द्युलोक में बसते हैं और न पृथ्वी में ही वे तो नासिका, चक्षुः आदि आयतनो में ही वास करता है।।10।।

142।19 विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः।।19।।

वह विश्वकर्मा ऋषि तो सर्वत्र चक्षु है, सर्वत्र मुख है, सर्वत्र बाहु है और सर्वत्र पद भी है। एकाकी ही वह परमात्मदेव इस द्यावापृथिवी को उत्पन्न करते हुए इन्हें मात्र अपने ही भुजदण्डों और चरणों से पीट–पाटकर तत्स्वरूप बना देता है (=उसे किसी बाह्म उपकरणादि की अपेक्षा नहीं रहती है)।।19।।

143।23।। बाचस्पति विश्रकर्माणसूतये भसोजुवं वाजे अद्या हुवेम। स वो विश्रान्ति हवनानि ओषद्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा।।23।।

वेदवाणी के पालक समस्त विश्व के विधाता और मन के वेग के समान वेग वाले उस विश्वकर्मा को हम आज स्वरक्षा के निमित्त इस यज्ञ में आह्वान करते हैं। रक्षण में अत्यन्त कुशल एवं सबका कल्याणकारी वह परमात्मा हमारी सभी सामग्रियों को आस्वादित करे।।23।।

144।26 विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत संहक। तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रां सप्त ऋषीन पर एकमाहुः।।26।।

विशिष्ट मन, व्यापक, धारणकर्ता, निर्माता और परमदृष्टि

विश्वकर्मा जिन भक्तों को देखने वाला है, उन भक्तों के लिए अभिमत भोगपदार्थ उस लोक में अमृतरस के द्वारा सुस्वादु होते रहते हैं–जहाँ सप्तर्षि उस विश्वकर्मा से एकत्व को प्राप्त हो रहे हैं।।26।।

145।28 त आयजनत द्रविण ७ँ समस्मा ऋषयः पूर्वे जरितारो न भूना। असूर्ते सूर्ते रजसि निषन्ते ये भूतानि समकृण्वभिमानि।।28।।

पूर्वकाल के प्रथम स्तोता उन वसिष्ठादि सप्त ऋषियों ने उस विश्वकम्र के ब्रह्माण्ड रूप जल को अबाहुल्यभाव अर्थात् कामना मात्र स्वरूप मं यजन किया (=होम किया=सृष्टि करके अगत्ण्व रूप विश्वकर्मा को सृष्टि जल से अभिवर्धित किया)। सतरह अवयवों वाले लिंग शरीरों से प्रेरित तथा विस्तीर्ण अन्तरिक्ष लोक में स्थित जन वसिष्ठानि ऋषियों ने इन भूतों को उत्पन्न किया है।।28।।

146।30 वमिदर्भ प्रथमं दाध्रा आपो यत्रं देषाः समगच्छन्त विश्वे। अजस्य नामावर्धयेकमर्पितं यस्मिन्विश्वानि भुवनानि तस्थुः।।30।।

उन आपः ने उस विश्वकर्मा को ही प्रथम गर्भ के रूप में ध ारण किया था कि जिस गर्भ में विश्वेदेव सम्प्राप्त हुए थे। उस एक अजन्मा की ही नाभि में यह भूत एवं देव सब पिरोए हुए हैं कि जिसमें यह समस्त भुवन या भूतवर्ग प्रलयकाल में भी ठहरे रहते हैं।।30।।

147।53 इदुं त्वा विश्वे देवा अग्रे भरन्तु चित्तिभिः।

स नो भव शिवस्त्व ७ँ सुप्रणीको विभावसुः।।53।।

हे अग्ने विश्वेदेव तुम्हें संज्ञानों के साथ पोषित करें। सुष्ठ ज्वालामुख और विभाधन तुम हे अग्नेः हमारे लिए कल्याणकर होओ।।53।।

148।54 पञ्च दिशो दैवीर्यज्ञभवन्तु देवीरपामति दुर्भाति बाधमानाः। रायस्पोषे यज्ञपतिभामजन्ती रायस्पोषे अधि यज्ञो अस्थात।।54।।

पाँच देवों के अधिष्ठात्व में वर्तमान पाँचों दिव्य दिशायें हमारी दुबुद्धि व कुविचारणा को बाधित करते हुए रक्षा करें। धन की पुष्टि में यजमान को भागी बनाती हुई यह दिग–देवियाँ हमारे यज्ञ को धन की पुष्टि में धारण करें।।54।।

दैवीः दैव्यः देवानामिन्द्रयमवरुणसोमब्राह्मणा सबन्धिन्यो दैवः।

150।57 वीत ७ँ हविः शोमित ७ँ शामिता यजध्यै तुरीयों यज्ञो यमं हव्यमेति। ततो वाका आशिषों नो जुषन्ताय।।57।।

देवों को प्रिय हविः यजन के लिए रामिता नाम के ऋत्विज के द्वारा यज्ञार्थ शोधित की जाकर और जब चतुर्थ यज्ञ हव्य को प्राप्त करता है (–सर्वप्रथम अध्वर्यु यजुः का, होता ऋचा का ब्रह्मा दक्षिण में स्थित रहकर अप्रतिरय का पाठ करता है और तब चौथे नम्बर पर साक्षात् होत्र किया जाता है। इस प्रकार होत्र की चतुर्थ क्रिया होती है। अथवा पूर्व में अध्वर्यु श्रावण कराता है, तब आग्नीषु प्रतिश्रावण 'यज्ञ' कराता है, तब अध्वर्यु प्रेष करता है, तदनन्तर होता ब्षटकार करता है। इस प्रकार भी होत्र क्रिया चतुर्थ ठहरती है।) यज्ञ सम्पन्न होने पर स्तोत्रादि एवं आर्शीवचन हमें प्राप्त होते हैं।।57।।

यद्वा आदावध्वर्युणा श्रावराम तत आग्रीघ्रेण प्रत्याश्रावणम यजेति ततोऽध्वर्योः प्रैषः ततो होतर्वषटकारः इति यंज्ञश्चतुर्घा कल्पते।।57।।

150।77 अग्रे तमद्याश्र्चं न स्तोमैः क्रतुं न भद्र ७ँ हृदिस्पृशम। अध्यामा त ओहैः।।77।।

हे अग्नेः आज हम हवियों के द्वारा सर्वफल प्रापक स्तोत्रों के

द्वारा अभिवर्षित करते हैं। जैसे कि अश्वमेधीय अश्व को मंत्रों से और भी मेध्य बनाते हैं अथवा हृदय में स्थित किसी संकल्प को विविध शुभ विचारों से और भी कल्याणमय बनाते हैं।।77।।

151।99 धामं ते विश्वं भुवनमधि श्रितभन्तः समुद्रे हृद्यन्तरायुषि। अपामनीके समिथे य आभूतस्तमश्याम। भधुभन्तं त अर्भिम्।।99।।

हे अग्नेः यह समस्त ब्रह्माण्ड ही तुम्हारी व्याप्ति के अन्दर स्थित है, समुद्र के अंदर हृदय के अन्दर और आभुष्य में। जलों के मुख और युद्ध में तेजोरूप जो घृत भरा हुआ है– तुम्हारी उस मधुर तरंग घृत को हम आस्वादित करें।।99।।

●●●

अष्टादशोऽध्यायः 18

152।1 वाजेश्च मे प्रसश्च मे प्रयतिश्च मे प्रसितिश्च मे धीतिश्च मे क्रतुश्च मे स्वरश्च मे श्लोकश्च में श्रवश्च मे श्रुतिश्च मे ज्योतिश्च मे स्वश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।।1।।

अन्न, अन्नदान की अनुज्ञा, शुद्धि, अन्नविषयक औत्सुवय ध्यान, संकल्प, साधुशब्द, श्लोक, यश, श्रुति, ज्योति और स्वर्ग मुझे यज्ञ के द्वारा सम्प्राप्त होवे।।1।।

153।28 वाजाय स्वाहा प्रसवाय स्वाहाऽपिजाय स्वाहा कतवे स्वाहा वसवे स्वाहाऽहर्पतये स्वाहाहे मुग्धाय स्वाहा मुग्धाय वैन ँ शिवाय स्वाहा विनंशिन आन्त्यायनाय स्वाहा भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पर्तये स्वाहाधिपतये स्वाहा प्रजापतये स्वाहा। इयं ते राण्मित्राय यन्तासि यमन ऊर्जे त्वा वृष्टयै त्वा प्रजनां त्वाधिपत्याय।।28।।

अन्न प्रधान चैत मास के लिए स्वाहा। प्रेरक वैशाख मास के स्वाहा। ज्येष्ठ मास के लिए स्वाहा। वागप्तधान आषाढ़ मास के लिए स्वाहा। सूर्य को ताप करने वाले भाद्रपद के लिए स्वाहा स्वल्पकाल दिन वाले कार्तिमास के लिए यह आहुति है। विनाशहीन विष्णु के स्वरूप वाले मार्गशीर्ष मास के लिए यह हबि है। अन्त में पुष्टिकारी पौष मास के लिए यह हविः है, मासान्त फाल्गुन के लिए स्वाहा। भुवनपति के लिए स्वाहा। अधिपति के लिए स्वाहा। प्रजापतिके लिए स्वाहा। हे अग्नेः यह तुम्हारा राज्य है। नियनता तुम यजमान के नियामक हो। विशिष्ट अभरस के निमित्त मैं तुम्हें अनिश्चित करता हूँ। वर्षा एवं प्रजा के आधिपत्य के निमित्त में तुम्हें घृतधार से सींचता हूँ।।28।।

154।29 आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पता ँ श्रोत्रं यज्ञेनं कल्पहां वाग यज्ञेन कल्पतां मनो य0 कल्पतामात्मा

य0 कल्पतां ब्रह्मा य0 कल्पता ज्योर्तिज्ञेन क0 स्वर्यज्ञेन क0 पृष्ठं य0 यज्ञो यज्ञेन क0। स्तोमश्च यजुश्च ऋक च साम च वृहश्च रथन्तरं च। स्वर्दअगन्माभूता अभूम। प्रजापतेः प्रजा अभूम वेट स्वाहा।।29।।

यज्ञ के द्वारा आयुष्य सिद्ध होवे। प्राण चक्षु श्रोत्र, वाक, मन, आत्मा, ब्रह्मा, ज्योति, स्वर्ग, स्तोत्र यजु, ऋक–साम और बृहत–रथन्तर साम यज्ञ के द्वारा सिद्ध होवे। हे देवोः यज्ञ के द्वारा हम स्वर्ग को प्राप्त हुए। हम अमर हो गए हम प्रजापति की प्रजा बन गए। यह परोऊ आहुति है। यह प्रत्यक्ष आहुति है।।29।।

155।30 वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदिंति नाम वचसा कशमहे यस्यामिदं विश्वं भुवनयादिवेश तस्या नो देवः सविता धर्म साविषत्।।30।।

अन्न की अनुशा में वर्तमान हम जगत का निर्माण करने वाली महनीया अखण्डिता, जिसमें वह भूतमात्र प्रतिष्ठित है–उस माता भूमि को हमे वेद वचनों से अपने अनुकूल बनाते हैं। उसी भूमि में सवितादेव हमें अवस्थाने के लिए प्रेरित करें।।30।।

156।36 पयः पृथिव्यां पय ओर्षधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो धाः। पयस्वती प्रदिशः मसम।।36।।

हे अग्नेः तुम पृथ्वी में रस स्थापित करो न ओषिधियों में, अन्तरिक्ष में और द्युलोक में जल को स्थापित करें। हे अग्नेः तुम्हारी कृपा से यह सब प्रकृष्ट दिशाएँ मेरे लिए रसपूर्णा होवें।।36।।

157।43 प्रजापतिविश्वकर्मा मनो गन्धर्वस्तस्य ऋवसामान्यप्सरस एष्टयो नाम। स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट ताम्यः स्वाहा।।43।।

इन्द्रिय प्रजाओं का स्वामी और सब कुछ का निर्माणकारी यह मन ही गन्धर्व है। ऋचाएँ और सामगान उसकी अप्सराएँ हैं। वे 'एष्टयः' (=इच्छाकारिणी) नाम वाली है। वह मन रूप गन्धर्व हमारी इस ब्राह्मण। क्षत्रिय जानि को पावे। उसके लिए यह आहुति है। उन एष्टियाँ के लिए यह आहुति है।।43।।

158।49 तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमान्ते हविर्भिः। अहेऽमानो वरुणेह बाध्युरुश ँ स मा न आयुः प्रमोषीः।।49।।

हे वरुण : यजमान हविः प्रदान के द्वारा जिस–2 पदार्थ की तुमसे प्रार्थना करता है–मैं मंत्र के द्वारा तुम्हारी स्तुत करता हुआ उस–2 पदार्थ की याचना करता हूँ। हे प्रभूतयश वरुणः वह –2 पदार्थ तुम क्रोध न करते हुए, यजमान के निमित्त स्वीकृत करो। तुम हमारी आयु को समाप्त म कर दो।।49।।

159।51 अग्निं युनज्मि शवसा घृतेन दिव्य ँ सुपर्ण वयसा बृहन्तम्। तेन वयं गमेम ब्रघस्यं विष्टप ँ स्वोरुहावा अधिनाकभुत्तमम्।।51।।

दिक, सुगमन और स्वधूम के द्वारा महान अग्नि को मैं बल व घृत से संयोजित करता हूँ। उस अग्नि के द्वारा हम आदित्य के उत्तम लोक को प्राप्त होते हैं। स्वर्ग में आरोहण करते हुए हम उससे भी उत्तम वैकुण्ठ में चढ़ते है।।51।।

160।53 इन्दुर्दक्षः श्येन ऋतावा हिरण्यपक्षः शकनो मुरण्युः। महान सधस्थे ध्रुव आ निषन्तो नमस्ते अस्तु मा मां हि ँ सीः।।53।।

अद्वारक, उत्साहवान, श्येन पक्षी सा, ऋतबान स्वर्णपंख, शकुनि, सबको भोजन देने वाला महान स्थिर तथा यज्ञशाला में स्थित जो अग्नि है उस तुम्हें नमस्कार है। हे अग्नेः तुम हमें मारो नहीं।।53।।

161।58 यदाकतात्समसुस्मोद्वदो वा मनसो वा सभृतं चक्षुषो वा। तदनु प्रेत सुकृतामु लोकं यम ऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणाः।।58।।

हे ऋत्विजोः वो यज्ञकर्म प्रजापति के संकल्प से हृदय से, मन से अथवा चक्षु–प्रभूति ज्ञानेन्द्रिय से पूर्ण समारमी के साथ प्रकट हुआ था उसी को करके पुण्यवानों के लोक को प्राप्त होओ; जहाँ पूर्वोत्पन्न एवं चिरस्तम ऋषि भी प्राप्त हो चुके हैं।।58।।

162।66 अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन। अर्थस्मिधातू रजसो विमानोऽजस्त्रो धर्मो हषिरस्मिनाम।।66।।

मैं जन्म से ही जातवेदस अग्नि हूँ। घृत मेरी चक्षु है। मेरे मुख में अमृत रहता है। ऋग–यजु–साम लक्षण भिधातु यज्ञ भी मैं ही हूँ। जल का निर्माता, अनुपक्षीण आदित्य या मेघरूप प्रवार्म भी मैं ही हूँ। हविः भी मैं ही हूँ।।66।।

163।76 धामच्छदगिरिन्द्रो ब्रह्मा देवो बृहस्पतिः। सचेतसो विश्वेदेवा यज्ञं प्रावन्तु नः शुभे।।76।।

न्यूनातिरिक्त स्थानों को पूर्ण करने वाला अग्नि, इन्द्र, ब्रह्मा, बृहस्पति और ज्ञानवान विश्वेदेव हमारे इस शुभ यज्ञ को बचावें।।76।।

164।77 त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄंः पाहि श्रृणुघी गिरः। रक्षां तोकमुत त्मना।।77।।

हे युवतम अग्ने हविर्दाता यजमान के मनुष्यों को तुम बचाओ, हमारी स्तुति वाणिओं को सुनोः तुम हमारे पुत्र और स्वात्मा को भी बचाओ।।77।।

●●●

एकोनविंशोऽध्यायः 19

165।24 आश्रावयेति स्तोत्रियाः प्रत्याश्रावो अनुरूपः।

यजेति धाम्यारूपं प्रणाया यैयजामहाः।।24।।

'आश्रावय' स्तोत्रिय (=स्तोत्र में प्रथम तृचा का पाठ का रूप है; प्रत्याश्राव 'अस्तु वौषइ' अनुरूप (ऋत्तिमतृच) है; 'यज्ञ' धाम्या (=ऋचाओं) का रूप है और ये यजामहे प्रगाथा जानना चाहिए।।24।।

166।30 व्रतेन दीक्षतमाप्रोति दीक्षयाप्तोति दक्षिणाम।

दक्षिणा श्रद्धामाप्रोति श्रद्धया सत्यमाज्यते।।30।।

व्रत से दीक्षा को प्राप्त करता है; दीक्षा से दक्षिणा को, दक्षिणा से श्रद्धा को प्राप्त करता है और श्रद्धा से सत्यब्रह्म प्राप्त किया जाता है।।30।।

167।36 पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः प्रपितामहेभ्यः स्वधामिम्यः स्वधा नमः। अक्षन्पितरोऽमीयदत्त पितरोऽतीवृपन्त पितरः पितराः शुन्धद्धम।।36।।

(अंङ्गारेषु वा वहिष्परिधि दक्षिणतो जुहोत्याश्विनमुत्तरे मध्यमे सारस्वतमैन्द्रं दक्षिणे पितृभ्यइति प्रतिमन्त्रं (का0 19।3।17)

स्वधा (=अन्न) की ओर आने वाले पितरों के लिए यह स्वध ा अन्न प्रदान है। उन्हें नमस्कार है। स्वधाप्रिय पितामहों के लिए यह स्वधान्न है। स्वधाप्रिय प्रपितामहों के लिए यह स्वधान्न है। पितरों ने सुरा का भक्षण किया। वे मदमस्त हुए। वे परितृप्त हुए हे पितरोः हाथ धोकर अब तुम सब शुद्ध होवो।।36।।

168।43 उमाभ्यां देव सवितः पावत्रेण सवेना च।

मां पुनीह विश्वतः।।43

हे सवितादेवः तुम अपने पवित्र एवं अनुज्ञा दोनों के द्वारा मुझे सविताः पवित्र बनाओ।।43।।

169।45 ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये। तेषां लोकः स्वधा नमो यज्ञो देवेषु कल्पताम्।।45।।

समान मन वाले एवं पद व अधिकार में समान जो पितर यमराज के लोक में विद्यमान है। उन पितरों के लोक में स्वधा अन्न प्राप्त होवे। यह यज्ञ तो देवों के लोक को ही प्राप्त होवे।।45।।

170।47 द्वे सृती अश्रृणवं पितृणामहं देवानामुत मर्त्यानाम्।
ताभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति चदन्तरा पितरं मातरं च।।47।।

इस संसार में मरने वाले मनुष्यों की मैंने दो ही गतियाँ—पितरों की तथा देवों की सुनी है। उन्हीं दो गतियाँ से यह सारा संसार आता और जाता है। उन्हीं के अन्दर चलकर यह संसार पितृलोक बैकुण्ठ का तथा मातृलोक भूमि को प्राप्त होता है।।47।।

171।49 उदीरतामवर उतपसस उन्मध्यमाः पितरः सोम्णासः।
असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु।।49।।

सोम को सम्पादन करने वाले हमारे जो पितर इस निम्न भूलोक में स्थित है—वे उभत मध्यम लोक में आरूढ़ होवें, मध्यम लोकवाली है—वे उत्तम लोकवासी हों और जो उत्तम लोक में वास करते हैं—वे मुक्त हो जावे। कौटिल्यरहित और यज्ञ या सत्य को जानने वाले जो पितर वायव्य शरीरधारी बन गए है, वे पितृजन हमें आह्वानों में बचावें।।49।।

172।50 अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोभ्यासः। तेषां वय ँ समतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम।।50।।

सोम को सम्पादन करने वाले अंगिरस, नवरव–दशग्नव अथर्वा जन तथा भृगुजन ही हमारे पितर है। उन यजनशील पितरों की हम सुमति में विद्यमान होवें तथा हम उनके शुभ संकल्प में भी सदा विद्यमान रहे।।50।।

173।58 आयुत्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्रिष्वात्ताः पथिमिदेवयानैः।
अस्मिन्यजे स्वधया मदन्तोऽधिब्रुवन्तु तेऽवन्त्वसान।।58।।

सोमरस का पान करने वाले हमारे अग्निष्वस्त (जिन्हें अग्नि विविध स्वधा हवियों को आस्वादित कराती हैं) और श्रौत स्मार्त पुण्यकर्मों के करने वाले हैं। पितर देवयान मार्गों से यहाँ यज्ञ में आवें। व इस यज्ञ में स्वधान्न से मदमस्त होते हुए हमें सपरुपात अपना कहे और वे हमें दुःखों से बचावें।।58।।

174।68 इदं पितृभ्यो नमोऽस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपरास ईयुः। ये पार्थिव रजस्या निषन्ता ये वा नून ✓ सुवृजनासु बिक्षु।।68।।

आज उन पितरों को यह हविराम प्राप्त होवे जो पूर्व में चले गए और जो निर्गत व्यापार परब्रह्म को प्राप्त हुए। जो इस पृथ्वी लोक में स्थित है अथवा जो निश्चय करके सुष्ठु यज्ञादिकारिणी यजमान प्रजाओं में अधिष्ठित हो रहे हैं।।68।।

175।76 रेतो मूत्रं विजहाति योनिं प्रविशदिन्द्रियम्। गर्भो जरायुणावृत उल्बं जहाति जन्मना। ऋतेन सत्यमिन्द्रियम् विपानं ✓ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु।।76।।

लिंग योनि में घुसकर उसमें वीर्य को गिराता है, परन्तु वही लिंग अन्यत्र मूत्र का परित्याग करता है, इस प्रकार जरायु से लिपटा हुआ गर्भ जन्म होने पर झिल्ली को छोड़ देता है। इस सत्यनियम से यही सत्य निकलता है कि उचित का साथ उचित

का त्याग या स्वीकार कराता है। अतः शुद्ध करके पिया गया सोम इन्द्रियों के बल को देने वाला है।।76।।

176।77 दृष्टा रूपे व्याकरोत्सत्यानृते प्रजापतिः। अश्वल्दामनृतेऽद-धाच्छ्रद्धा ७ँ सत्ये प्रजापतिः। ऋतेन सत्यमिन्द्रियमण।।77।।

प्रजापति ने देखभाल कर ही सत्य और असत्य को पृथक–2 किया था। उसने सत्य में श्रद्धा को स्थापित किया और असत्य में अश्रद्धा को। इस प्रकार स्पष्ट है कि परिशोधित सोम बल देने वाला है।।77।।

177।93 अङ्गान्यात्मन्मिषजा तदश्विनात्मानभङ्गै समधात्सरस्वती। इन्द्रस्य रूप ७ँ शतमानमायुश्चन्द्रेण ज्योतिरमृतं दधानाः।।93।।

इन्द्र के रूप, सौ वर्ष की आयु और चन्द्र के द्वारा अमृत ज्योति मन को बनाते हुए वैद्य अश्विनौ ने विविध अंगों को एमत्रित किया। सरस्वती ने अन्त में अंगों के साथ आत्मा का संयोग किया।।93।।

178।95 तेजः पशूना ७ँ हविरिन्द्रयावत्परिस्त्रुता पयला सारघं मधु। अश्विम्यां दुग्धं मिषजा सरस्वत्या सुतासुताभ्याममृतः सोम इन्दुः।।95।।

पशुओं का तेज, वीर्यशाली हविः, चुवाई गई सुरा अनभिषुत दुग्ध व छत्ते का शहद लेकर वैद्य अश्विनौ सरस्वती के द्वारा इन्द्र के निमित्त तेज दुहा गया। अभिषुत–अनभिषुत के द्वारा अमृत व आह्लादक सोम भी दुहा गया। (इन तीनों ने ही सौमामणि याग को भी देखा)।।95।।



विंशोऽध्यायः 20

179।12 प्रथमा द्वितीयैर्द्वितीयास्तृवीयैस्तृतीयाः सत्येन सत्यं यज्ञेन सत्यं यज्ञेन यज्ञो यजुर्भिर्यजू ँ षि सामभिः साभान्याग्मि ऋचः पुरोनुवावयाभिः पुरोऽन्द्रवाक्या याज्याभिर्याज्या वषटकारैर्वषट्कारा आहुतिभिराहुतयो में कामान्समर्धयन्तु भूः स्वाहा।।12।।

प्रथम देवता द्वितीय देवों से, द्वितीय देवता तृतीय देवों से, तृतीय देवता सत्य से, सत्य यजुषों से, यजुष सामों से, साम ऋचाओं से, ऋचाएँ पुरोअनुवाक्याओं से, पुरोअनुवाक्या याज्याओं से, याज्याएँ वषट्कारों से, वषटकार आहुतियों से संगत होकर मुझे बढ़ावें। आहुतियाँ मेरे मनोरथों को समृद्ध बनावें। 'भूः' यह आहुति है।।12।।

180।15 यदि दिवा यदि नक्तमेना ँ सि चकृमा वयम्।
वायुर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्व ँ हंसः।।15।।

यदि दिन में या रात्रि में हम पाप करें, उस सारे ही पाप से मुझे वायु छुड़ावें।।15।।

181।20 द्रुपदादिव मुमुचानः स्विभः स्मातो मलादिव।
पूतं पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः।।20।।

जैसे चलकर खड़ाऊँ से छूटा हो और स्वेद लगा हुआ स्नान करके मल से शुद्ध हुआ हो तथा जिस प्रकार छत्रों के द्वारा घृत शुद्ध किया गया हो, उसी प्रकार जल मुझे पाप से शुद्ध कर दे।।20।।

183।23 एघोऽस्येधिषीमहि समिदसि तेजोऽसि तेजो मयि धेहि। समाववर्ति पृथिवी समुषाः समु सूर्यः समु विश्वमिदं जगत। वैश्वानरज्योतिभूयासं विभून्कामान्व्यश्नवै भूः स्वाहा।।23।।

हे समित : तुम ईंधन हो। हम तेरे प्रभाव से अभिवृद्धि को प्राप्त होवें। हे समित, तुम समिधा हो। तुम तेज हो। तुम मुझमें भी तेज धारित करो। पृथ्वी सम्यग आवर्तन करती है; उष्मा और सूर्य भी। यह सम्पूर्ण जगत भी समावर्तनशील है। मैं वैश्वान्तर ज्योति होऊँ। मैं प्रभूत कामनाओं को प्राप्त होऊँ। भू: यह आहुति है।।23।।

(भू: स्वाहा भुवनं भू: सत्तामात्रं ब्रह्म तस्मै स्वाहा सुहुतमस्तु भूरित्यव्ययम्।।23।।)

183।43 तिस्रो देवीर्हविषा वर्धमाना इन्द्रं जुषाणा जनयो न पत्नीः। अच्छिन्नं तन्तु पयसा सरस्वतीडा देवी भारती विश्वतूर्तिः।।43।।

हविः से वृद्धि को प्राप्त होने वाली पत्नी स्त्रियों की भाँति इन्द्र की सेवन करने वाली और सर्वत्ररात्रि इडा, सरस्वती व भारती तीन देवियाँ यज्ञ –तन्तु का अच्छिन्न बनावें।।43।।

(देवी : दीप्यमानाः विश्वास्मिन सर्वत्र त्वरते तर्ण गच्छति विश्वमूर्तिः रनर्वगामिनीति पु विशेषणे तिसृणाम।।43।।)

184।63 तिस्त्रस्त्रेधा सरस्वत्यश्विना भारतीडा। तीव्रं परिस्त्रुता सोममिन्द्राय सुषुवुर्भदम्।।63।।

हे आश्विनौः मध्यस्थाना सरस्वती द्युस्थाना भारती और पृथ्वीस्थाना इडा नाम की तीन देवियाँ चुवाई गई सुरा के साथ इन्द्र को पीने के लिए सोमरस को धारण किया (= दिया)।।63।।

185।72 वरुणः क्षत्रमिन्द्रियं भगेन सविता श्रियम्। सुत्रामा यशंसा बलं दधाना यज्ञमाशत।।72।।

वरुण क्षत्र व बल, सविता ऐश्वर्य के साथ श्री और सुरक्षक इन्द्र यश के साथ बल को यजमान में धारित करते हुए यज्ञ में प्रतिष्ठित होते हैं।।72।।

186।84 पावका नः सरस्वती वाजेमिर्वाजिनीवती। यज्ञं वष्टु धियावसुः।।84।।

पवित्रकर्मी, अन्नों से अन्नवती सरस्वती और बुद्धि में धन को धारण करने वाली सरस्वती हमारे यज्ञ को चाहे।।84।।

187।85 चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम। यज्ञं दधेसरस्वती।।85।।

प्रिय सत्यो को प्रेरित करने वाली और सुमतियों को प्रेरित करने वाली सरस्वती हमारे यश को धारण करती है।।85।।

188।86 महो अर्ण सरस्वती प्रचेतयति केतुना। धियो विश्वा विराजति।।86।।

अपने ज्ञान या कर्म के द्वारा सरस्वती महद जल की प्रकाशित करती है और सर्वप्राणिस्थ बुद्धियों को प्रदीपित करती है।।86।।



एकविंशोऽध्यायः 21

189।8 आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिभुक्षतम्। मध्वा रजा ὒ सि सुक्रतू।।8।।

हे मित्र–वरुण : तुम मेरे मार्ग को घी–दूध से सींचों। हे शुभ कर्म : मेरे लोकों को तुम दोनों मधु से सींचो।।8।।

190।13 वनूनपाच्छुचिव्रतस्तनूपाश्च। उष्णिहा छन्द इन्द्रियं दित्यवाऽ गौर्वयो दधुः।।13।।

पवित्रकर्म वनूनपाद अग्नि, शरीर को पवित्र करने वाली सरस्वती, उष्णिक छन्द और दिव्य हविः को वहन करने वाली गाय में इन्द्र में बल व आयु को धारित किया।।13।।

191।31 होता यक्षभराश ὒ सं न नग्रहुं पति ὒ सुरया मेषजं मेषः सरस्वती मिषगथो न चन्द्यश्विनोर्वपा इन्द्रस्य वीर्य बदरैरुपवाकामिमेषजं तोक्मभिः पयः सोमः परिस्मुक्त घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज।।31।।

दैवी होता नराशस प्रयाजदेव, सरस्वती, अश्विनौ व इन्द्र का यजन करे। सुराकन्द मेष अश्विनौ का चान्द्रस्थ बपा बरे, ब्रीहि–यवांकुर आदि अषज है। दूध, सोमरस, सुरा, घृत व मधु इन्द्र का बल–बीच बनें। हे मानव होत :। तु घृत से यजन करो।।31।।



द्वाविंशोऽध्यायः 22

192।9 तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।

धियो यो नः प्रचोदयात।।9।।

वरणीय सविता देव के उस पाप भर्जनकारी तेज को धारण करते हैं, जो हमारी बुद्धियों को सत्कर्मों में प्रेरित करें।।9।। (3।35)

उवट् अथ सावित्रीणामिष्टीनाम। तत्सवितुरित्यादिकाः षट याज्यानुवावया : साविष्यो गायत्र्यः। आद्या व्याख्याता तस्य सवितुः सर्वस्थ प्रसवदातुः। आदित्यान्तरपुरुकस्य देवस्य हिरण्यगर्भो पाध यवच्छिभस्य वा विज्ञानानन्दास्वभावस्य वा ब्रह्मणः। 'वरुणाद्ध वा अभिषिषिचानाद्भर्गोउपचक्रम वीर्य वै भर्गः इति श्रुतिः। तेन हि पापं भृज्जति दहित। 'भृगी' भर्जने'। अथवा भर्गस्तेजोवचनः। यद्वा मण्डलं पुरुषो रश्मय इत्येतात्मितयमभिप्रेयते। देवस्य दानादिगुणयुत्तस्य। धीमहि। 'ध्यै चिन्तायाम। अस्य छान्दसं सं प्रसारणम। ध्यायामः चित्तयामः। 'निविध्यासं तद्विषयं कुर्म इति यावत। धियो यो नः। धीशब्दो बुद्धिवचनः कर्मवचनो वो वाग्वचनश्च। बुद्धी कर्माणि वा वाचो वा। यः सविता नोऽस्माकम। प्रचोदयात। चुद संचोदने'। प्रकर्षेण चोदयति प्रेरयति तस्य सवितुः सबंन्धि वीर्य तेजो वाध्यायाम इति सबधः। वाक्यमेदेन वा योजना। तत्सवितुर्वारणीयं वीर्य तेजो वादेवस्य ध्यायामः यश्च बुद्धीः प्रचोदयात प्रेरयत्यस्माकं तं च ध्यायामः स च सवितैय भर्गो देवस्य ध्यायामः धियो यद्भर्गः अस्माकं प्रेरयति।।3।35।। तेजः सत्यज्ञानानन्दादिवेदान्त प्रतिपाद्यं वयं धीमहि ध्यायामः। छान्दस संप्रसारणम। भर्गो वीर्यवा। वरुणाद्व वा अभिषिषिचानाद्भर्गोऽपचक्राम वीर्य महीधर वै भर्गः (5।4।5।1) इति श्रुतेः। यश्च नो बुद्धीः प्रेरयति

(भाग्य) तं च ध्यायामः। स च सवितैव। लिङ्गव्यत्ययेन योजनात सवितुदेवस्य तत् भर्गो धीमहि। यो यत भर्गो नो बुद्धीः प्रेरयति।।35।।

193।10 हिरण्यपाणिभूतये सवितारमुपह्लये। स चेत्ता देवता पदम्।।10।।

रक्षा के लिए मैं हिरण्य सविता का आह्वान करता हूँ। वह विज्ञानी देवता ही स्वर्गादि उत्तम पद को जानने वाला है।।10।।

194।11 देवस्य चेततो मही प्र सवितुर्हवामहे। सुमति ꣳ सत्यराधसम।।11।।

सब कुछ जानने वाले सविता देव की महती और सत्यसाधिनौ सुमति की हम याचना करते हैं।।11।।

195।12 सुष्टुति ꣳ सुमतीवृधो राति ꣳ सवितुरीमहे। प्रदेवाय मतीविदे।।12।।

सुमति को बढ़ाने वाले और सबकी मतियों को जानने वाले सविता देव की सत्स्तुति करके हम उसके दान की याचना करते हैं।।12।।

196।13 शति ꣳ सत्पति महे सवितारमुपह्ये। आसवं देववीतये।।13।।

देवों के तर्पण के लिए श्रेष्ठों के पावक और शुभ कर्मों में प्रेरणा देने वाले सविता देव के दान की हम याचना करते हैं।।13।।

197।14 देवस्य सवितुर्मतिमासवं विश्वदेव्यम्। धिया भग मनामहो।।14।।

सब देवों के तर्पण के निमित्त प्रेरक सविता देव के ऐश्वर्य की याचना हम स्वबुद्धि (= स्तुति) के द्वारा करते हैं।।14।।

198।15 अग्नि ꣳ स्तोमेन बोधम समिधानो अमर्त्यम्। हव्यादेवेषुनोदधत।।15।।

हे अध्वयोः समिद्ध करते हुए तुम अमर अग्नि को प्रबोधित करो; प्रबुद्ध होकर अग्नि हमारी हवियों को देवों में ले जाकर धरे।।15।।

199।17 अग्निं इतं पुरो दधे हव्यवाहमुप बुवे।। देवाँ शा आसादयादिहा।।17।।

दत्त अग्नि को अपने सम्मुख स्थापित करता हूँ और उस हविर्वाहक को मैं कहता हूँ कि वह यहाँ यज्ञ में देवों को लाकर प्रतिष्ठित करें।।17।।

200।20 काय स्वाहा कस्मैस्वाहा कतमस्मै स्वाहा स्वाहाधिमाधीहाय स्वाहा मनः प्रजापतये-चित्त विज्ञातायादित्यै स्वाहादित्यै मह्यै स्वाहादित्यै। सुभृडीकायै स्वाहा सरंस्वत्यै-सरस्वत्यै पावकायै-सरस्वत्यै बृहत्यै-पूष्णे -पूष्णे प्रथव्याय-पूष्णे नरंधिष्पाय-त्वष्ट न त्वष्ट। तुरीपाय-त्वष्टे-त्वष्टे तुरीपाय-त्वष्टि पुरुरूपाय-विष्णवे-विष्णवे निभूयपाय-विष्णवे शिपिविष्टाय स्वाहा।।20।।

प्रजापति के लिए यह आहुति है। प्रजापति–प्रजापतितम के लिए स्वाहा। आधान किए हुए के लिए स्वा। मन में वर्तमान प्रजापति–। चित्त को जानने वाले आदितय–। महती–सुखदा अदिति–। महती व पवित्र कर्मी सरस्वती–। पथ में प्राप्त और अपने उदय द्वारा मनुष्यों को शाब्दित करने वाले पूषा–। तीव्रगति और बहुरूपधारी त्वष्टा च मत्स्यादि अवतार धर कर रक्षा करने वाले तथा अन्तर्यामिरूप से प्राणियों में प्रविष्ट विष्णु के लिए यह आहुति समर्पित है। (यह औद्ग्रमण मंत्र है।)।।20।।

201।21 आयुर्यज्ञेन कल्पता ंॅ स्वाहा प्राणो यज्ञेन क0 स्वा0 पानो यज्ञने क0 स्वा0 कानो य0क0. स्वा0 दानो य0क0स्वा0 समानो य0क0स्वा0 चक्षु य0क0स्वा0 श्रोत्रं य0क0स्वा0वा0य0क0स्वा0 मनो य0क0स्वा0 त्मा य0क0स्वा0 ब्रह्मा य0क0स्वा0 ज्योति य0क0स्वा0 स्वर्यज्ञोन क0स्वा0 पृष्ठं य0क0 स्वा0 यज्ञो यज्ञेन कल्पता ंॅ स्वाहा।।33।।

यज्ञ के द्वारा आयु प्राप्त हो, स्वाहा। प्राण–अपान–व्यान–उदान–समान– चक्षु–श्रोम–वाक– मन–आत्मा–ब्रह्मा–ज्योति–स्वः–पृष्ठ–यज्ञ यज्ञ के द्वारा सिद्ध होवें। यह आहुति है।।33।।

203।34 एकस्म्मै। द्वाब्भ्याम। शताय। एकशतायेत्त्येक शतायः व्युष्ट्स्याऽतिवि उष्टष्यै। स्वगर्ग्गायेतिस्व हं गाय।।334।।

एक–दो–शत एक सौ एक–रात्रि–दिवस के लिए यह आहुति है।।34।।



त्रयोविंशोऽध्यायः 23

204।10 सूर्यं एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः। अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत।10।।

होता—हे ब्रह्मनः सूर्य अकेला ही आकाश में संचारण करता है। चन्द्रमा पुनः उत्पन्न होता है। हिम का भोजन अग्नि है और यह भूमि ही महत आवपन है (= इसमें विविध बीज पुनः—2 बोये जाते हैं।।10।।

205।16 न वा उ एतन्म्रियसे न रिष्यसि देवाँ शा इदेषि पथिमिः सुणाभेः। यत्रासते सुकृतो यम ते ययुस्तमं तवा देवः सविता दधातु।।16।।

हे अश्वः यह जो तुम हमारे द्वारा काटे जा रहे हो, वह तुम मरोगे नहीं और न नष्ट ही होगे। अब तो तुम सुगम देवयान मार्गों से देवों को प्राप्त होगे। जहाँ पर पुण्यवान निवास करते हैं और जहाँ वे गए हैं, वहाँ तुम्हें सवितादेव धारित करें।।16।।

206।33 गायत्री त्रिष्टुब्जगत्यनुष्टुप्पडत्तया सह। बृहत्युष्णिहा ककुप सूचीभिः शम्यन्तु त्वा।।33।।

(तीनों पत्नियाँ ताँबा—चाँदी—सोने की सुइयों से घोड़े की खाल का छेदती है)। गायत्री त्रिष्टुप, जगती, अनुष्टुप, पंक्ति के साथ बृहती, उष्णिक, जगती, अनुष्टुप, पक्ति के साथ बृहती, उष्णिक और ककुप, हे अश्वः तुम्हें इन सुइयों से संस्कृत करें।।3।।

207।48 ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिर्द्यौः समुद्रसम ँ सरः। इन्द्रः पृथिव्यै वर्षीयान् गोस्तु मामा न विद्यते।।48।।

ब्रह्म सूर्य के समान ज्योति हैं। द्यौ समुद्र के समान सरोवर

है। इन्द्र पृथ्वी से बढ़कर या चिरन्तन है और गाय की इयत्ता नहीं है।।48।।

208।50 अपि तेषु त्रिषु पदेष्वस्मि येषु भुवनमाविवेश। सद्यः पयोमि पृथिवीमुत द्यामेकेनाङ्गेन दिवो अस्य पृष्ठम्।।50।।

हे ब्रह्मन–उन्हीं तीन स्थानों में (तुम्हारे साथ) मैं भी विद्यमान रहता हूँ कि जिनमें यह समस्त लोक समा गया है। मैं तत्क्षण ही इस पृथ्वी पर घूम आता हूँ और इस द्युलोक में भी। एक ही अंगे मन से मैं इस स्वर्ग के उत्तम स्थान को भी जानता हूँ।।50।।

209।58 षडस्य विष्ठाः शतमक्षराण्यशीतिर्होमाः समिधो हतिस्मः। यज्ञस्य ते विदथा प्रबृवीमि सप्त होता ऋतुशो यजन्ति।।58।।

हे ब्रह्मनः इस यज्ञ के छः अन्न है। सौ अक्षर है 80 होत्र है। तीन समिधाएँ हैं। यज्ञ का जानने वालों मैं तुम्हें यह तथ्य बतला रहा हूँ। सात होता ऋतु के अनुकूल यजन करते हैं।।58।।

210।62 इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः। अय ँ सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्माय वाचः परमं व्योम।।63।।

हे यजमानः यह वेदि ही पृथ्वी का परम अन्त है। यह यज्ञ ही भुवन की नाभि है। यह सोम ही सेचक अश्व का वीर्य है और यह ब्रह्मा ही त्रयी वाणी का परम व्योम है।।62।।

211।63 सूभूः स्वयंभूः प्रथमोऽन्तर्महत्यर्णवे। दधे हगर्भमृत्वियं यतो जातः प्रजापतिः।।63।।

सुष्ठु विश्व का उत्पादक, स्वयं ही घृत–ब्रह्माण्ड शरीर और उस अनादिनिधन परम पुरुष ने उस सृष्टि–महार्णव में काल प्राप्त गर्भ को धारित किया। उसी गर्भ से प्रजापति पुरुष उत्पन्न हुआ।।63।।

212।64 होता यक्षत्प्रजापति ँ सोमस्य महिमः। जुषतां पिबतु सोम ँ होतर्यज।।64।।

दैवी होता ने सोम की महिमा से प्रजापति को पूजा यजन किया जाता हुआ वह प्रजापति महिग्रहस्थ सोम का पान करे। हे मानव होतर। तुम यजन करो।।64।।

213।65 प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परिता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तमो अस्तु वय ँ स्याम पतवो रयीणाम।।65।।

हे प्रजापते! यह भूतमात्र तुमसे कुछ भिन्न नहीं है। यह जो समस्त चराचर भूत है, इन सबके ऊपर वह प्रजापति है। हे प्रजा पतेः हम जिन कामनाओं वाले होकर तेरा होत्र करें; वह दूसरा होवे। तुम्हारे दया से हम धनों और धनियों के स्वामी होवें।।65।।



चतुर्विंशोऽध्यायः 24

214।3 शुद्धबालः सर्वशुद्धवालो मणिवालस्त आश्विनाः श्येतः श्येताक्षोऽरुणस्ते रुद्राय पशुपतये कर्णा यामा अवलिप्सा रौद्रा नमोरूपाः पार्जत्याः।।3।।

शुद्ध बाल सर्वशुद्ध बाल और मणिशुद्ध बाल पशु यह अश्विनौ के पशु है। श्वेत, श्वेत चक्षु और लाल पशु वह पशुपति रुद्र के पशु है। चन्द्र श्वेत कानों वाले पशु यम के है। गर्व युक्त पशु रुद्र सम्बन्धी होते हैं और नमोरूप पर्जन्य सम्बन्धी पशु है।।3।।

215।10 कृष्णा भौमा धूम्रा आन्तरिक्षा बृहन्तो दिव्याः शबलां वैद्युताः सिध्यास्तारकाः।।10।।

काले तीन पशु भूमिदेव ताक है। धूम्र वर्ण तीन पशु अन्तरिक्ष देवताक है। बड़े तीन पशु द्युदेवताक है। विविध वर्ण तीन पशु विद्युत देवताक है। सिद्ध रोगी तीन पशु नक्षत्रदेवताक है।।10।।



पञ्चविंशोऽध्यायः 25

216।13 य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः। यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम।।13।।

जो आत्मा व बल का देने वाला है, विश्व जिसके अनुशासन को मानता है, देवता भी जिसकी अनुज्ञा में वर्तमान रहते हैं, जिसकी कृपाकोर अमृत स्वरूप है और जिसका क्रोध साक्षात मृत्यु है, उसी प्रजापति देव की हम हविः से परिचर्या करें।।13।।

217।14 आ नो भद्राः कतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः। देवा नो यचथा सदमिद्धधे असन्नप्रायुवोरक्षितारो दिवेदिवे।।14।।

चारों ओर से हमें अहिंसित, अनाकान्त, शत्रु–भेदक और कल्याणकारी यश प्राप्त होवें। जिस प्रकार कि देवता सदा हमारी अभिवृद्धि में तल्लीन रहें और दिन–प्रतिदिन वे अप्रमादभाव से हमारे रक्षक बने रहे।।14।।

218।44 न वा उ एतन्म्रियसे न रिष्यसि देवाँ शा इदेषि पथिभिः सुगभिः। हरी ते युञ्जा पृषती अमृतायुर्वास्थाद्वाजी धुरि सामस्य।।44।।

हे अश्वः यज्ञार्थ काटे जाकर न तो तुम मरोगे ही और न विनष्ट ही होओगे। यहाँ से तो अब तुम देवमार्गों से सीधे देवों को ही प्राप्त होओगे। तुम्हारे रथ में इन्द्र के हरी तथा मरुतों के पृथ्वी अश्व संयोति होवंगे। अश्विनो के रासम के आगे भी वेत्रवान अश्व आ जाएगा।।44।।

219।47 अगे त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूव्यः। वसुरगिर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तम ꣹ रयि दाः। त्वं त्वा शोचिष्ठ

दीदिवः सुभाय नूनमीमहे सखिभाः।।47।।

हे अग्ने; तुम्हीं हमारे अत्यन्त निकट स्थित हो। तुम हमारे रक्षक, शरण और कल्याणकारी होओ। अग्नि वासक और धन दान के द्वारा कीर्तिवाला है। हे अग्नेः तुम हमारे यज्ञ की ओर आओ। तुम हमें अत्यन्त दीप्ति युक्त धन प्रदान करो। हे अत्यन्त दीप्तिवान एवं सबके प्रकाशक अग्नेः मित्रों के सुख के लिए हम तुमसे धन याचित करते हैं।।47।।



षडविंशोऽध्यायः 26

220।1 अग्निश्च पृथिवी च संगाते ते मे संनमतामदो वायुश्चान्तरिभयं च सनते ते मे सनमतमद आदित्यश्च दौश्च सनते ते मे सनमतामद आपश्च वरुणश्च सनते ते मे सनतामदः। सप्त स ७ सदो अष्टमी। भूतसाधनी सकामाँशा अध्वनस्कुरु संज्ञानमजुमेऽमुना।।1।।

अग्नि और पृथ्वी, वायु और अन्तरिक्ष आदित्य और द्यौ अलः और वरुण परस्पर संगत है। वे मुझसे संगत करें। हे परमात्मन : तुम्हारे अग्नि, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्युलोक जल, वरुण के सात अधिष्ठान है। आठवी अधिष्ठान पृथ्वी भूतमात्र की साधिका है। हे देव : तुम हमारे मार्गों को हमारे अभीष्टो से पूर्ण बनाओ। हे परमात्मनः उस (नाम) से मेरा संगम होवें।।1।।

221।15 उपहरे गिरीणा ७ संगमे च नदीनाम। धिया विप्तो अजायत।।15।।

पर्वतों के निकट और नदियों के संगम स्थल में यज्ञोपयोग बुद्धि से सोम उत्पन्न होता है।।15।।

222।16 उच्चः ते जातमन्धसो विविसद्भम्याददे। उग्र ७ शर्म महिश्रवः।।16।।

हे सोम। तुम्हारे रस जो अंश ऊर्ध्व होकर आहुति के द्वारा द्युलोक में प्रतिष्ठित हुआ था, वर्षा के रूप में तुम्हारे उसी उग्र सुखस्वरूप, महत और कीर्तिमय रस पृथ्वी ग्रहण करती है।।16।।



सप्तविंशोऽध्यायः 27

223।9 अमुत्रभूयादध यद्यमस्य बृहस्पते अभिशस्वेरमुञ्चः। प्रत्यौहतामाश्विना मृतुमस्माद्वेवानामने भिषजा शचीभिः।।9।।

परलोक से सम्बन्धित और यम के नरक–पातादि पाप से हे बृहस्पतेः तुम हमें छुड़ाओ। देवभिषग अश्विनौ स्वयुक्तियों से हमसे मृत्यु को हटाये।।9।।

224।10 उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यत्त उत्तरम। देव देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्।।10।।

हे अग्नेः श्रेष्ठ परमात्म–ज्योति को देखते हुए हम अंधकार से पार होकर देवों में एक ही देव तथा उत्तम ज्योति सूर्य को प्राप्त हुए।।10।।

225।25 आपो ह यद्बृहतीविश्वमायन्गार्भ दधाना जनयन्तीरग्रिम। ततो देवाना ॅं समवर्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम।।25।।

महती आपः ने जब इस विश्वप्रपंच को गर्भ रूप में धारण किया था। गर्भ को धारण करके उन्होंने अपने अंदर ऊष्मा को उत्पन्न किया था। तब देवों का एक मात्र प्राण वह हिरण्यगर्भ विद्यमान हुआ। उस हिरण्यगर्भ प्रजापति के लिए हम हविरादि से यजन करें।।25।।

226।26 यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद्दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम। यो देवेष्वधि देव एक आसीत्कस्मै देवाय हविषा विधेम।।26।।

जिस अन्तर्यामी परमात्मदेव ने स्वमहिमा से दक्ष प्रजापति को अपने गर्भ में धारण करते हुए तथा यज्ञ (=सूष्टि को उत्पन्न करने वाले साध्य पितर आदि) को उत्पन्न करते हुए आदि जलों को सब ओर से देखा जाना था और जो देवों के मध्य एक ही देवता था, उसी परमात्मा के लिए हम हविः से यजन करें।।26।।

अष्टाविंशोऽध्यायः 28

227।18 देवीस्तिस्मस्तिस्त्रो देवीः पतिमिन्द्रमवर्धयन। अस्पृक्षद्भारती दिवं ँ रुद्रैर्यज्ञ ँ सरस्वतीडा वसुमती गृहान्वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज।।18।।

तीन देवियाँ पालक इन्द्र को बढ़ाती हैं। भारती द्युलोक को छूती है, सरव्ती रुद्रों के साथ यज्ञ को स्पर्श करती है और धनवती इडा गृहों पृथ्वी को स्पर्श करती है। धनवान तथा यजमान के घर को धन से भरने के लिए नीचे देवियाँ घृत पियें। हे होतरः यजन करें।।18।।



एकोनविंशोऽध्यायः 29

228।1 समिद्धो अञ्जन्कृदर मतीनां घृतमग्ने मधुमत्पिन्वमानः वाजी वहन्वाजिन जातवेदो देवानां वक्षि प्रियमा सधस्थम्।।1।।

हे जात प्रज्ञानः अग्ने समिद्ध बुद्धियों के गर्भ (=रहस्य) को प्रकट करते हुए, स्वादिष्ट घृत को देवों में भरते हुए, वेगवान तथा देवों में हवि प्राप्त कराते हुए तुम देवों के प्रिय यज्ञ में देवों को ले आओ।।1।।

229।5 एता उ वः सुभगा विश्वरूपा विपक्षोभिः अयमाणा उदातैः। ऋष्वाः सतीः कवषः शुम्भ माना द्वारा देवीः सुप्रायणा भवन्तु।।5।।

सौभाग्यशाविनी, अनेक रूपों वाली, आने–जाने वाले कपाट–पक्षों से विस्तार्यभागा गमनशीला, सुमीचीना, सब्दकारिणी और शोभायमाना यह द्वारदेवियाँ सुगमना होवें।।5।।



त्रिंशोऽध्यायः 30

230।1 देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय। दिव्यो गन्धर्वः कैतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचे नः स्वदतु।।1।।

हे सवितादेवः यज्ञ को प्रेरित करो। यजमान को ऐश्वर्य के प्रेरित करो। वाणी का धारक दिव्य तथा विज्ञान को पवित्र करने वाला हमारे विज्ञान को पवित्र करे। वाणी का स्वामी हमारी स्तुति को आस्वादित करे।।1।।



त्रयस्मिशोऽध्यायः 33

231।31 उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्य ँ स्वाहा।।31

उस जातप्रज्ञान सूर्यदेव को विश्व के देखने के लिए रश्मियाँ ऊपर द्युलोक में लाती है।।31।।

232।38 तन्मित्रस्य वरुणस्यामिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे। अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः संभरन्ति।।38।।

मित्र (=पुण्यवानों का दृष्टा) और वरुण (=दुष्कर्मियों का द्रष्टा) के देखने के लिए सूर्य द्युलोक में अपने स्वरूप को प्रकट करता है। इस सूर्य का चमकीला तेजःस्वरूप मित्र और अनन्त है। इसके दूसरे कृष्ण–स्वरूप को रसहारिणी रश्मियाँ ही वहन करती है। (=सूर्य की कुछ रश्मियों को वेद काली कहता है–यह एक रहस्य है)।।38।।

233।40 बट्सूर्य श्रवसा महाँ शाअसि सत्रा देव महाँ शा असि। महा देवान्तमसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम्।।40।।

हे सूर्यदेव : तुम यश से महान हो। सत्य ही हे देव : तुम हान हो। प्राणवान यह सूर्य स्वमहिमा से देवों का पुरोहित है। वह व्यापक और अदमनीय ज्योतिः स्वरूप है।।40।।

234।43 आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयभमृतं मर्त्य च। हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन।।43।।

कृष्ण प्रकाश के साथ वर्तमान मनुष्य व देवों को स्व–स्वस्थान में प्रतिष्ठित करते हुए तथा लोक–लोकान्तरों को देखते हुए अपने सुनहले रथ से संचरण करता है।।43।।

235।57 मित्र ऺ हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम् धियं धृताची ऺ साधन्ता।।57।।

पवित्र बल, मित्र तथा पापियों को नष्ट करने वाले वरुण का मैं आह्वान करता हूँ। वे दोनों हमारे घृताश्चना बुद्धि को साधित करें। (=हमारी बुद्धि में यज्ञ की प्रेरणा दे।)।।57।।

236।87 ऋर्धगित्था स मर्त्यः शशमे देवतातये। यो नूनं मिभावरुणावमिष्टय आचक्रे हव्यदातये।।87।।

सत्य ही वह मनुष्य यज्ञ में शान्ति प्राप्त करता है जो अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिए मित्र–वरुण को हविर्ग्रहण के अनुकूल बना लेता है।।87।।

●●●

चतुस्त्रिशोऽध्यायः 34

237।8 अन्विदनुमते त्वं मन्यासै शं च नस्कृधि। क्रत्वे दक्षाय नो हिन्दु प्रण आय ॐ षि तारिषः।।8।।

हे अनुमते : तुम हमारे मनोरथ का अनुमोदन करो और हमारा कल्याण करो। कर्म व बल के लिए तुम हमें प्रेरित करो और हमारी आयुओं को बढ़ाओ।।8।।

238।24 अष्टौ व्यख्यत्ककुमः पृथिव्यास्मीधन्व योजना सुप्त सिन्धून। हिरण्याक्षः सविता देव आगाद्दधद्रत्रा दाशुषे वार्यणि।।24।।

सुनहरी, किरणों वाला सूर्य पृथ्वी से सम्बन्धित आठों दिशाओं को, तीनों अन्तारिओं (=लोकों) को, योजनों दूर प्रदेशों को तथा सातों विशाल सागरों को प्रकाशित करता है। हविदाता यजमान के लिए वरणीय रत्नादि प्रदान करता हुआ सवितादेव उदय होता है।

239।43 त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः। अतो धर्माणि धरयन।।43।।

जगत के रक्षक और अदमनीय यज्ञदेवता विष्णु ने तीन पदा (=लोकों) को रखा या लाँघा। उन्हीं से वह सत्य प्रभृति धर्मों को धारण करता है।।43।।

240।44 तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवा ॐ सः समिन्धते। विष्णोर्यत्परमं पदम्।।44।।

विष्णु का जो परम गुप्त स्थान है, उसे जगत के प्रलोभनों से पर अर्थात् निष्कामु और सतत जागरूक विद्वान दीपित करते है।।44।।

241।45 घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुधे सुपेशसा। द्यावापृथिवी धर्मणा वरुणस्य विष्कमिते अजरे भूरिरेतसा।।45।।

उदकवती, लोकों को आश्रयणीया उर्वी, विस्तृता, जलदायी शुभरूपा, अजरस और प्रभूत रेतस्व। द्यावापृथिवी वरुण के धर्म के द्वारा दृढ़ीकृता है।।45।।

242।49 सहस्तोभाः सहच्छन्दस आवृतः सहप्रमा ऋषयः सप्त दैव्याः। पूर्वेषा पन्थामनुदृश्य धीरा अन्वालैभिरे रथ्यो न रश्मीन।।49।।

स्तोत्र, छन्द, कर्म तथा प्रमाण के साथ सात दैवी ऋषियों भरद्वाज–कश्यप–गौतम–अभि–विश्वामित्र जमदग्नि–वसिष्ठ ने सृष्टियज्ञ को प्राप्त किया था। पूर्वकल्य के दैवी ऋषियों के मार्ग का अनुसरण करके उन धीमानों ने इस सृष्टि कर्म को प्रारम्भ किया था। जैसे सारथि घोड़े की लगामों को ग्रहण करता है।।49।।

243।58 ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यत्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व। विश्वं तद्भद्र यदवन्ति देवा बृहद्वदेत्र विदथे सुवीराः। य इमा विश्वा विश्वकर्मा यो नः पिता अभपतेऽमस्य नो देहि।।58।।

हे ब्रह्मणस्पतेः तुम इस लोक के नियन्ता हो। तुम हमारे कहे हुए सूक्त को जानो और हमारे पुत्र को प्रीणित करो। सारा विश्व कल्याणमय है कि जो देवता रक्षा करते हैं। य इमा (17।17) 'विश्वकर्मा' (17।26), यो नः पिता' (17।27) तथा अभपते (18।83 मंत्र कहे जा चुके हैं।।58।।



पच्चत्रिशोध्यायः 35

244।22 अस्मात्त्वमधि। जातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः। असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा।।22।।

हे अग्नेः तुम इस यजमान के निमित्त से उत्पन्न हुए हो। अब पुनः यह तुमसे उत्पन्न होवे। यह अमुक स्वर्गलोक के योग्य होवे। यह आहुति है।

●●●

षटत्रिशोऽध्यायः 36

245।12 शं नो देवीरमिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शं योरभिस्भवन्तु नः।।12।।

अभीष्ट सिद्धि व पीने के निमित्त द्योतमान जल हमारे लिए सुखद होवें। हमारी सुखप्राप्ति तथा रोग–निवारण के अनुकूल वे स्मवित होवें।।12।।

246।14 आपो हिष्ठा मायोभुवस्ता न ऊर्जे दधाहन। महे रणाय चक्षसे।।14।।

जल सुखकारी है। वे हमें महारमणीय प्रकाश के लिए बल में धरित करें।।14।।

247।15 योवः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः।।15।।

हे आपः। तुम्हारा जो अत्यन्त सुखकर सार है, उसी का तुम यहाँ हमें भजन बनाओ। जैसे कामयमात्र माताएँ स्वपुत्र को स्तन्यपान कराती हैं।।15।।

248।16 तस्माअरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयषा च नः।।16।।

हे आपः। हम तुम्हें उसके लिए प्रभूत मात्रा में प्राप्त करें; जिसके यज्ञगृह के लिए तुम अनुकूल होते हो। हे जलों; तुम हमें पवित्र बनाओ।।16।।

249।22 यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु। शं नः कुरु प्रजाभ्योऽमयं नः पशुभ्यः।।22।।

हे भगवन : जिस–2 से तुम उचित समझते हो उससे हमें निर्भय करो। हमारी सन्तानों की तुम सुख दो और हमारे पशुओं को अभयत्व।।22।।

सप्तत्रिंशोऽध्यायः 37

250।11 यभाय त्वा मखाय त्वा सूर्यस्य त्वा तपसे। देवस्त्वा सविता महवानक्तु। पृथिव्याः स ॐ स्पृशस्पाहि। अर्चिदसि शोचिरसि तपोऽसि।।11।।

हे धर्मः यम, यज्ञ और सूर्य के तप के लिए मैं तुम्हें जल से पवित्र करता हूँ। (धर्म को घृत से आलिप्त करना), हे धर्म! सविता देव तुम्हें मधुर घृत से आलिप्त करें। हे चाँवीः तुम अग्नि से पृथ्वी के संस्पर्श को बचाओ। हे धर्मः तुम चन्द्र की रश्मि सदृश हो। तुम अग्नि के तेज से हो। तुम सूर्य के ताप के समान हो।।11।।

251।14 गर्भो देवानां पिता मतीनां पतिः प्रजानाम। सं देवो देवेन सवित्रा गत स ॐ सूर्येण रोचते।।14।।

देवों की गर्भ, स्तुतियों का पिता और प्रजाओं का अधिपति प्रवर्ग्य सवितादेव के साथ संगत हुआ। वह अब सूर्य के साथ ही शोभित हो रहा है।।14।।

252।19 हृदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्याय त्वा। ऊर्ध्वो अहवर दिवि देवेषु धेहि।।19।।

हे धर्मः हृदय–मन की शुद्धि और द्युलोक–सूर्यलोक की प्राप्ति के लिए मैं तुम्हारा स्तवन करता हूँ। ऊर्ध्वभुख होकर, हे धर्म : तुम हमारे यज्ञ को द्युलोकस्य देवों के धारित करो।।19।।

253।21 अहः केतुना जुषता ॐ सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा। रात्रिः केतुना जुषता ॐ सुज्योति ज्योतिषा स्वाहा।।21।।

अपनी शुभ ज्योति के साथ सुज्योतिष्मान दिवस सूर्य के साथ हविः का सेवन करें। यह आहुनि है, अपनी ज्योति से शुभ ज्योति रात्रि प्रज्ञापक अग्नि के साथ इस हविः का सेवन करें।। यह आहुति है।।21।।

अष्टत्रिंशोऽध्यायः 38

254।20 चतुःस्त्रक्तिर्नाभिर्ऋतस्य सप्रथाः स नो विश्वायुः सप्रथाः स नः सर्वायुः सप्रथाः। अप द्वेषो अप ह्वरोऽन्यवतस्य सश्चिम।।20।।

जो महावीर चार दिशाओं रूपी लोकों वाला यज्ञ की नाभि और विस्तार युक्त है। वह हमें सम्पूर्ण आयुष्य प्रदान करे। समग्र आयुष्य देवे। हे महावीर : तुम द्वेष को दूर करो। हमसे कौटिल्य को दूर करो। हम जगदनुग्रहरूप व्रतधारी परमात्मा से संगत होवें।।20।।

255।27 मयि त्यदिन्द्रियं बृहन्मयि दक्षो मयि कतुः। धर्मस्त्रिशुग्विराजति विराजा ज्योतिषा सह ब्राह्मणा तेजसासह।।20।।

वह प्रसिद्ध मदृध इन्द्रियबल मुझमें होवे। संकल्प सम्पत्ति मुझमें होवे। संकल्प मुझमें होवे। तीन ज्योतियों वाला धर्म मुझमें शोभित होता है। आदित्य ज्योति वेद और ब्रह्म ज्योति के साथ धर्म मुझमें शोभित होवे। (=ऋत्विग्यजमान धर्मस्थ दाँध प्राशन करते हैं)।।27।।

256।28 पयसो रेत आमृत, तस्य दोहमशीमह्युगमुत्तरा ँ समामात्विषः संवृक कत्वे दक्षस्य ते सुषुम्णस्पते, सुषेम्णाग्रिहुतः। इन्द्र पीतस्य प्रजापतिमक्षितस्य मधुमत उपहूत उपहूतस्य मक्षयामि।।28।।

दूध का जो सार दधि इस धर्म में भरा हुआ है उसके प्रपूरण को हम अगित्र–2 वर्ष तक भोगते रहें। हे कान्तिस्वरूप। हे सु सुखपालक धर्म : सु–सुखभूत अग्नि में होत्र से शेष, इन्द्र के द्वारा पीत, प्रजापति के द्वारा भक्षित, माधुर्ययुक्त तथा आह्वान किए गए तुम्हारे दधि के अंश को आमन्त्रित किया जाकर मैं खाता हूँ।।28।।

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः 39

257।4 मनसः, काममाकूतिं वाचः सत्यमशीय। प्रशूना ७ रूपममस्य रसो यशः श्रीः श्रयतां मयि स्वाहा।।4

मन के काम, संकल्प और वाणी के सत्य को हम प्राप्त करें। पशुओं का रूप, अन्न का रस यश और लक्ष्मी मुझमें आश्रयण करे। यह आहुति है।।4।।

258।13 यमाय स्वाहान्तकाय स्वाहा मृत्यवे स्वाहा ब्रह्मणे स्वाहा ब्रह्महत्यायै स्वाहा। विश्वैभ्यः स्वाहा द्यावापृथिवीभ्या ७ स्वाहा।।13।।

यज्ञ के लिए स्वाहा। अन्तक के लिए स्वाहा। मृत्यु के लिए स्वाहा। ब्रह्म के लिए स्वाहा। ब्रह्म हत्या के लिए स्वाहा। विश्वदेवों के लिए स्वाहा। द्यावापृथिवी के लिए स्वाहा।।13।।

●●●

एकात्रिंशोऽध्यायः 31

259।5 ततो विराऽजायत विराजो अधि पूरुष। स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भमिमयो पुरः।।5।।

उस परमात्मपुरुष से विराट उत्पन्न हुआ। विराज से पुरुष। उत्पन्न वह शिथिल–रिक्त हो गया। तदनन्तर उसने भूमि और लोकों को बनाया।

260।15 सप्तास्यासन्परिद्ययस्त्रि समिधः कृताः। देवा यद्यज्ञं तत्वाना अबन्धन्पुरुष पशुम्।।15।।

इस यज्ञ की सात परिधियाँ थीं। सात ही समिधाएँ बनाई गई थीं, जब देवों ने यज्ञ का विस्तार करते हुए प्रजापति पुरुष को ही आलभ्य पशु करके बाँधा था।।15।।

261।16 यज्ञेन यज्ञमययजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन। ते ह नाके महिमानः सचत्त यत्र पूर्वे साध्याः सान्ति देवाः।।16।।

देवों ने यज्ञ से ही यज्ञ पुरुष का यजन किया था। परन्तु वे पूर्वकाल के धर्म थे। उन महिमावान ऋषियों ने यजन के द्वारा स्वर्ग प्राप्त किया था, जहाँ कि पूर्व साध्य और देवता वास करते हैं।।16।।

262।17 अदयः समृतः पृथिव्यै रसाच्य विश्वकर्मणः समवर्ततागे। तस्य त्वष्टा विदधद्रपमेति तन्यर्त्यस्य देवत्वभाजानमगे।।17।।

जलों से संगृहीत पृथ्वी व विश्वकर्मा के रस से हिरण्यगर्भ पुरुष सर्वप्रथम वर्तमान था। त्वष्टा ने उसके रूप को निर्धारित किया। वही पूर्वकाल में मरणधर्मो का 'आजानदेवत्व' (=जन्मतः देवत्व) बना।।17।।

263।19 प्रजापतिश्चरति गर्मे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते तस्य योनि परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुभुवनानि विश्वा।।19।।

प्रजापति ही गर्भ के अन्दर उत्पन्न होकर गति करता है। वही विविध प्रपंचभाव से उत्पन्न होता है। उसकी उत्पप्रि या मूलसत्ता को तो बुद्धिमान ही परितः देखते है। उसी में यह समस्त भुवन ठहरे हुए हैं।।19।।

264।20 यो देवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितः पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये।।20।।

जो देवों के लिए तपता है। जो देवों का पुरोहित हैं देवों से जो पूर्व हुआ था, उस ब्रह्म तेज के लिए सर्वथा नमस्कार है।।20।।

265।22 श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्रयावहोरामे पार्श्वे नक्षयाणि रूपमधिनौ व्यान्तम्। इष्णामिषाणामु म इषाण सर्वलोकं म इषण।।22।।

हे परमपुरुष : श्री औरलक्षमी तेरी पत्नियाँ है। अहोसम तेरे दो कक्ष है। न क्षत्र तेरा रूप है। अश्विनौ तेरा फैला हुआ मुख है। हे भगवनः इच्छा करते हुए तुम मुझे अपनाने की इच्छा करो। इस परलोक को मेरे लिए इच्छा करो और सर्वलोक को मेरे लिए इच्छा करो।।2।।



त्रित्रिंशोऽध्यायः 32

266।2 सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि। नैवभूहर्व न तिर्यञ्चं न मध्वे वरिजग्रमत।।2।।

उस विद्योतमान पुरुष से ही सब काल अवयव–निमेष–वर्षादि उत्पन्न हुए हैं। इस परम पुरुष को न किसी ने आज तक ऊर्ध्व मध्य या तिर्यक चलकर पकड़ा है (=वह सर्वथा अपार है)।।2।।

267।3 न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः। हिरण्यगर्भ इत्येष मा मो हि ँ सीदित्येषा यस्माभ जात इत्येषः।।3।।

उस परमात्मा का कोई अन्य सूर्यादि उपमान भी नहीं है कि जिस परमात्मा का नाम 'महायश' है। वह 'हिरण्यगर्भ' है आदि यह चार मंत्र, वह मारे नहीं आदि एक मंत्र और जिससे बढ़कर अन्य कोई उत्पन्न नहीं हुआ आदि दो मंत्र भी इस ब्रह्म के ही प्रतिपादक हे। (इनका पाठ अप ब्रह्मयंश में करना चाहिए)।।3।।

268।4 एषो ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः। स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः।।4।।

वह परमात्मदेव सम्पूर्ण दिशाओं को व्याप्त करके स्थित है वही सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ है। वही गर्भ के अंदर आता वर्तमान है। वही उत्पन्न सर्वप्रपंच है और वही उत्पन्न होने वाला सर्व–प्रपंच है। हे मनुष्यो : वह परमात्मा सबमें व्याप्त होकर स्थित होता है। वह सर्वत्र ही मुखादि अवयवों वाला है।।4।।

269।5 यस्माज्जातं न पुरा किं च नैव य आबभूव भुवनानि विश्वा। प्रजापतिः प्रजया स ँरराणस्मीणि ज्योती ँ षि सचते स षोडसी।।5।।

उससे पूर्व कुछ भी उत्पन्न नहीं हुआ था। जो स्वयं सर्वभूतमय हो रहा है। वह प्रजापति परमात्मा अपनी जीवप्रजा के साथ सम्यक रममाण होता हुआ अग्नि वायु–आदित्य तीन ज्योतियों को बनाता और उनमें व्याप्त होता है। वह परमात्मा ही षोडश अवयव वाला षोडशी है।।5।।

270।6 येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढ़ा येन स्वः स्तभितं येन नाकः। यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम।।6।।

जिस परमात्मा के द्वारा यह उगस्वभाव द्यौ (=आदित्य प्रभूति) धारित है और वह पृथ्वी जिसके द्वारा दृढ़ की हुई स्थित है, जिस परमात्मा के द्वारा स्वर्ग रोका हुआ स्थित है और जिसके द्वारा बैकुण्ठ भी आधारित है। जो अन्तरिक्ष में जलों या रजाकण से नक्षत्रादि का बनाने और धारण करने वाला है, उसी सर्वशक्तिमान के लिए हविः से परिवरण करें।।6।।

271।7 यं कन्दसी अवसा तस्तमाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने। यमाधि सूर उदिता विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम।। आपो हयर्द्वहतीर्थश्चिदापः।।7।।

यह क्रन्दनशीला द्यावापृथिवी वृष्टि–अन्नादि के द्वारा जगत को स्तभित करने वाली भी मन से काँपती हुई, अपनी रक्षा के निमित्त से जिस परमात्म–पुरुष का मुख जोहवी हैं। जिसमें ही उदय होकर यह सूर्य प्रकाश करता है, उसी प्रजापति देव के हम हविः से सदा परिचरण करें। (यहीं पर महती आपः ने जब विश्व को गर्भ में धारण किया था और जिसने आपः को 'आदि मंत्र' भी पढ़ना चाहिए)।।7।।

272।12 परि द्यावापृथिवी सद्य इत्वा परि लोकान्परि दिशः परि स्वः। ऋतस्य तन्तुं विततं विचृत्य तदपश्यत्तदभवत्तदासीत्।।12।।

वह देव अतिशीघ्रता से इन द्यावापृथिवी को लाँघकर, इन सभी लोकों को लाँघकर, सभी दिशाओं को लाँघकर और स्वर्ग का भी अतिक्रमण करके स्थित है। ऋतु (=त्रिगुणात्मिक प्रकृति) के फैले हुए सूत्र को उच्छादित करके उसने उस प्रपंच ब्रह्म को देखा (=प्रपंच) बन गया। वही था—हिरण्य गर्भ।।12।।

273।14 यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते। तया मामद्य मेधयागे मेधावि नं कुरुं स्वाहा।।14।।

जिस परम पवित्र मेधा को देवगण व पितर आसाना करते हुए (चाहते) हैं। हे अग्नेः आज तुम उसी पवित्र मेधा से मुझे भी मेधावी बनाओ। तुम्हारे लिए यह आहुति है।।14।।

274।15 मेधां मे वरुणो ददातु मेधाअग्निः प्रजापतिः। मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधा धाता ददातु मे स्वाहा।।15।।

वरुण मुझे मेधा दे। अग्नि प्रजापति मुझे मेधा दे। इन्द्र—वायु—धाता भी मुझे मेधा ही देवे। सबके लिए यह आहुति है।

275।16 इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं चोमे श्रियमश्नुताम। मयि देवा दधतु श्रियमुत्तमा तस्यै ते स्वाहा।।16।।

मेरी यह मेधारूपी श्री को ब्राह्मण क्षत्रिय दोनों आस्वादित करें। देवगण इस सर्वोत्तमा श्री—मेधा को ही मुझमें धारित करें। हे मेधः उस देवस्वरूपीणी तुम्हारे लिए यह पूर्णाहुति है। (प्रसन्न होओ)।।16।।



चत्वारिंशोऽध्यायः 40

276।1 ईशा वास्यमिद्र ७ँ सर्वं यत्किय जगत्यां जगत। तेन त्यक्तेन भुञ्जीया मागृधः कस्यस्विद्धनम्।।1।।

यह सब ईश्वर के द्वारा अभिव्याप्त है जो कुछ भी इस जगती में चराचर प्रपंच विद्यमान है। उस ईश्वर के द्वारा दिए गए पदार्थों का निष्काम भाव से सेवन करो। किसी के धन का लालच (व्रत) मत करो।।1।।

277।4 अनेजदेकं मनसो जवीयो मैनद्वेवा आत्रुव-पूर्वमर्शत। तद्वावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिभपो मातरिश्वा दधाति।।4।।

वह परमात्मा कम्पन या गति करने वाला नहीं है। वह एक है, वह मन से भी अधिक वेग वाला है, उसे वेग में देवता भी नहीं पा सकते। वह पहले से ही सर्वत्र व्याप्त है। दौड़ते हुए अन्य लोगों को वह लाँघ जाता है। उस परब्रह्म में ही स्थित होकर यह पवन आप (जवो) को धारण करता है।।4।।

278।5 तदेजति तभैजति तद्दरे तद्वान्तिके। तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः।।5।।

जीव रूप वह परमात्मा गमन करता है और स्थावर रूप वह कभी गतिशील नहीं है। (चराचर रूप वही है।) अज्ञानी के लिए वह दूर है, परन्तु ज्ञानी के लिए वही अत्यन्त निकट (=हृदय के अन्दर) स्थित है। वह सबके अन्दर है। वह इस सारे प्रपंच के बाहर भी है। (इसके विकारों से परे है)।

279।8 स पर्यगाच्छुकमकायभव्रणभस्त्राविर ७ँ शुद्धभपोपविद्धय। कविर्भनीषी परिभूः स्वयंभूर्याथातभ्यतोऽव्यदधाश्व तीभ्यः समाभ्यः।।8।।

वह परमात्मा सर्वत्र व्यापक है। वह वीर्यरूप, अकाय, अव्रण, स्नायुओं के बंधन से परे शुद्ध, पाप से न बँधा हुआ कवि, मनीषी, परितः व्याप्त और स्वयं जायमान (होने वाला) है। वर्ण परमात्मा सदा–सर्वदा के लिए पूर्व कल्पानुकूल ही पंच कल्पानुकूल ही पंचभूतादि को बनाता है।।8।।

280।12 वायुरनिलभमृतमथेदं भस्मान्त ऻ शरीरम्। ओऽम् कतो स्मरल्किबे स्मर कृत ऻ स्मरं।।15।।

अविद्या (=लौकिक ज्ञान) के द्वारा लौकिक दुःखों से पार हुआ जाता है और दूसरा विद्या (=ब्रह्म विद्या) के द्वारा अमृत लाभ किया जाता है।

वायु (17 पदार्थों का बना हुआ लिंग शरीर) प्राणत्व में मिल जाता है और (जीवात्मा) उस अमृतमय परमात्मा में, अब यह शरीर ? भस्म पर्यवसा भी है, शरीर। (लिंग शरीर जीवात्मा और स्थूल शरीर युक्त होने पर अपनी–2 गति को प्राप्त हो जाते हैं) हे जीव, संसार के कर्ता परमात्मा को 'ओऽम' करके स्मरण करो। इस परमात्मा को तुम मृत्यु–शय्या पर विद्यमाना क्लीयता के लिए करो। साथ ही अपने लिए कर्मों भी सदा विचार करते रहो (–कि कहीं कोई अनुचित कर्म तो नहीं हो गया है)।।15।।

281।17 हिरण्ययेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्। योऽसावादित्य पुरुषः सोऽसावहम्।।17।।

सुनहले पात्र (=आकर्षक घर–पदादि) के द्वारा सत्य (=परमात्मा) का मुख (अवेश द्वार) ढंका हुआ है। वह जो आदित्य में परम पुरुष है वही यह मैं हूँ। (ओऽम् व्यापक वृहद् परमात्मन)।।17।।





लेखक का परिचय

नाम	:	**श्री रमेश चन्द्र पाण्डेय**
पिता जी	:	**स्व. देवीदत्त पाण्डेय**
शैक्षिक योग्यता	:	एम.एस.सी. (गणित) एम.ए. (दर्शनशास्त्र)
सेवा	:	उ.प्र. कार्पोरेशन लिमिटेड शक्ति भवन, लखनऊ
सेवानिवृत्त	:	सहायक लेखाधिकारी
जन्म तिथि	:	7 अक्टूबर, 1945
जन्म स्थान	:	समकुढ़ा, बेलकोट, बेरीनाग पिथौरागढ़, (उत्तराखण्ड)
वर्तमान पता	:	डी–85, कूर्मान्चलनगर, पोस्ट–इन्दिरानगर, लखनऊ–226016 मो. : 9415795776
अन्य प्रकाशन	:	विभिन्न पत्रिकाओं एवं पुस्तकों में लेख प्रकाशित। वर्ष 2011 में "अमृतांजलि" पुस्तक का प्रकाशन।